समीक्षा लेख

।। ओ३म् ।।
गुरुकुलीय शिक्षा का विराट् स्वरूप

साध्वी देवप्रिया [1]*
[1] पतंजलि विश्वविद्यालय, हरिद्वार, उत्तराखंड, भारत

*संवाद लेखक - डॉ. साध्वी देवप्रिया, पतंजलि विश्वविद्यालय, हरिद्वार-249405 , भारत
Email - arpitarouth1@gmail.com

* गुरुकुलीय शिक्षा पद्धति का स्वरूप
* गुरुकुलों का स्थान
* शिक्षा का प्रारम्भ
* उपनयन व वेदारम्भ संस्कार
* प्राचीन शिक्षा का उद्देश्य आन्तरिक व बाह्य अनुशासन
* विद्याओं के प्रकार
* नारी शिक्षा
* सभी वर्णों के लिए शिक्षा
* प्राचीन भारत के शिक्षा केन्द्र एवं विश्वविद्यालय
* गुरु-शिष्य का विराट् सम्बन्ध्
* क्या गुरुकुलीय शिक्षा व्यवस्था का नई शिक्षा नीति से कोई सम्बन्ध है?
* उपसंहार

Some basic points of New Education Policy

* Growth of physical, vital, mental, intellectual and spiritual forces.
* Student centric or Teacher centric education?
* Curiosity based education.
* Mapping of knowledge status of the student.
* Inclusive education.
* Holistic education, ultimate goal of education.
* Observation & Project based education.
* Sustainable & enjoyable education (with life skill).
* Solution based education.
* Self reliant education.

1. गुरुकुलीय शिक्षा पद्धति का स्वरूप -

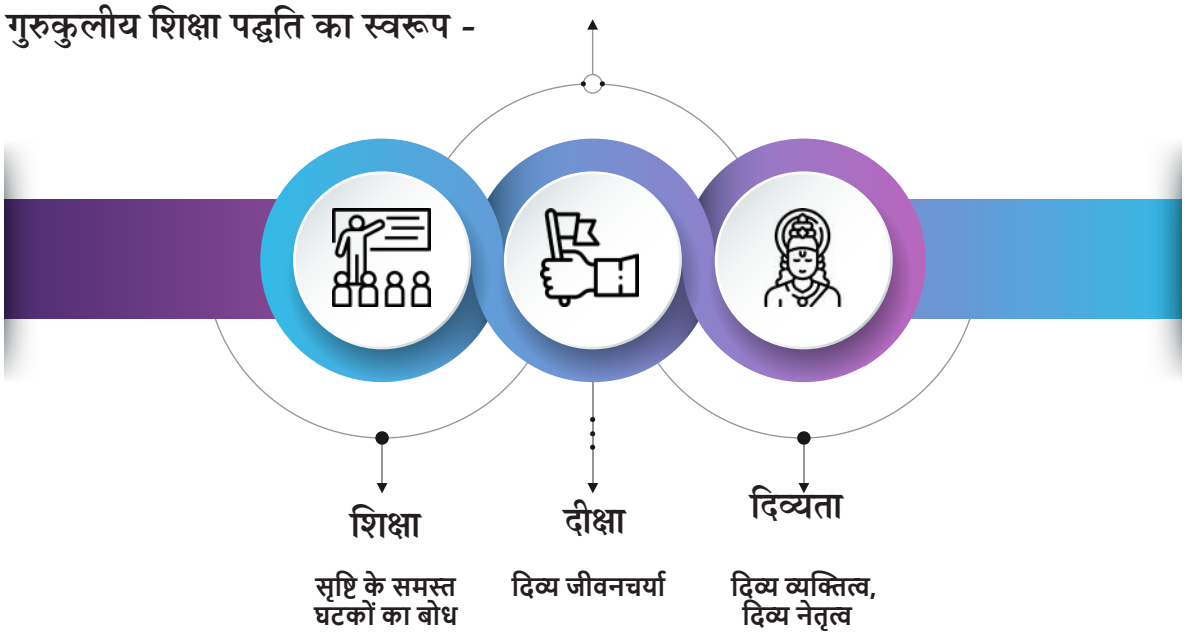

गुरुकुलीय शिक्षा और सामान्य शिक्षा में एक मूलभूत अन्तर यह है कि गुरुकुल में शिक्षा के साथ-साथ ही दीक्षा भी होती है अर्थात् शिष्य-गुरु जैसा पढ़ते-पढ़ाते हैं वैसा ही जीवन भी जीते हैं जबकि आजकल की शिक्षा में पहले डॉक्टर-इन्जिनियर को शिक्षा दी जाती है, बाद में उसका अभ्यास कराया जाता है। शायद इसीलिए गुरुकुल से जाते समय समावर्तन (सम्यक् आवर्तन) संस्कार कराते थे कि यहाँ गुरुकुल में यह ब्रह्मचारी इस शिक्षा-दीक्षा के अनुसार ही सम्यक वर्तता-आवृत्ति करता है, यह ज्ञान इसके स्वभाव का हिस्सा बन चुका है और अब यह एक दिव्य व्यक्तित्व और दिव्य नेतृत्व तैयार हो चुका है। शिक्षा का उद्देश्य अपनी सम्पूर्ण दिव्यता को (Express) अभिव्यक्त करना होना चाहिये किसी को (Impress) प्रभावित करना नहीं।

प्राचीन भारत में शिक्षा मानवीय व्यक्तित्व के उच्चतम विकास के विशिष्ट उद्देश्य से ही संचालित थी। इस उद्देश्य की पूर्ति तभी संभव हो सकती है जब व्यक्ति को शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा के स्तर तक निखारा जा सके। शिक्षा के इसी दूरगामी उद्देश्य को सम्मुख रखते हुए प्राचीन आचार्यों ने अपने छात्रों को सम्बोधित करते हुए कहा था कि-

श्रृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा आ ये धमानि दिव्यानि तस्थुः।[1]

आचार्य वेद को आधार या प्रमाण बनाकर बोलता था कि हे अमृतपुत्रों। जो दिव्य धाम हैं उनमें आप प्रतिष्ठित हो जाओ। दिव्य धाम से अभिप्राय है चेतना का उच्चतम स्तर। उपनिषदों में हम देखते हैं सत्यकाम जाबाल नामक छात्र जब अपने गुरु के पास विद्यार्जन के लिए आता है तो आचार्य उन्हें 100 गायें देकर जंगल में भेजते हैं और 1000 होने पर वापस आने का निर्देश देते हैं और कहते हैं कि तभी वापस आने पर ये उन्हें कुछ सिखा पायेंगे।

जब सत्यकाम लौटकर आते हैं तो गुरु उनसे पूछते हैं कि आपका भाल तो ब्रह्मतेज से चमक रहा है, ये ब्रह्मज्ञान आपको किसने दिया? सत्यकाम प्रत्युत्तर में कहते हैं गुरुदेव यह ज्ञान तो मुझे सूर्य ने दिया, दिशाओं ने दिया, हवाओं ने दिया, गायों ने दिया, शेष गुरुदेव आप मुझे अधीत करें। गुरुदेव कहते हैं तुम्हें किसी ज्ञान की आवश्यकता नहीं है तुम परमज्ञान प्राप्त कर चुके हो। अतः प्राचीन काल में शिक्षा के केन्द्र नगरों से दूर प्रकृति की गोद में एकान्त-शान्त प्रदेशों में होते थे जहाँ वह सहज ही चारों तरफ से उस परमसत्ता से एकात्म होता हुआ दिव्यता की ओर अग्रसर होता था।

अपनी इसी विशिष्ट शिक्षापद्धति के कारण ही भारत ने शताब्दियों तक न केवल विश्व का सांस्कृतिक मार्गदर्शन ही किया, अपितु शास्त्रविद्या, कृषि, उद्योग, कला-कौशल, औषधिविज्ञान, गणित-नक्षत्र विद्या तथा विज्ञान-तकनीकी के सभी क्षेत्रों में भी अग्रणी रहा। प्राचीन शिक्षा का उद्देश्य मात्रा व्यक्तिगत आध्यात्मिक व भौतिक उन्नति ही नहीं था अपितु इसका लक्ष्य लोक भावना से पूरित राष्ट्र निर्माण व विश्व बंधुत्व से भी अभिप्रेरित था वस्तुतः प्राचीन भारत की सांस्कृतिक व भौतिक समृद्धि का मूल कारण यहाँ के लोक जीवन की समावेशी भावना ही थी जो कि उस काल की विशिष्ट शिक्षा पद्धति के द्वारा निरन्तर पोषित होती रही।

2. गुरुकुलों का स्थान –

उपह्वरे गिरिणां संगमे च नदीनां, धियो विप्रा अजायत।[2]

मूल प्रकृति ही हमारी मूल संस्कृति है- श्रद्धेय स्वामी रामदेव जी महाराज)

आज नई शिक्षा नीति में पर्यावरण को अनिवार्य विषय माना जा रहा है, उसका मूल गुरुकुलीय शिक्षा पद्धति है। छात्रा प्रकृति के साथ ही विकसित होता था और प्रकृति के साथ एकात्म होता हुआ जीवन यात्रा में आगे बढ़ता था। प्राचीन काल में विद्या केन्द्रों की स्थिति वहाँ होती थी जहाँ कृषि व गोपालन के लिए पर्याप्त भूमि, फल, फूल, कन्द-मूल आदि खाने के लिए सघन उद्यान, यज्ञादि के लिए वनों की उपलब्धता तथा जलपूर्ति के लिए सरोवर या नदियों की उपस्थिति हो। यही कारण रहा कि प्रायः ग्रामों, नगरों व जनपदों से दूर, वनों या उपत्यकाओं पहाड़ों की तलहटियाँ या फिर नदियों के किनारे स्थित गुरु या आचार्य का निवास स्थान अथवा आश्रम ही सभी शिक्षार्थियों का शिक्षा स्थल हुआ करता था।

3. शिक्षा का प्रारम्भ-

माता गर्भ से लेकर 5 वर्ष तक प्रथम गुरु है, 5 वर्ष के पश्चात् गुरु शिष्य परम्परा में विद्यादान देने वाला गुरु है।

हमारी संस्कृति में माता को प्रथम गुरु माना गया है जो गर्भ से लेकर शैशवकाल तक शिशु को हर प्रकार की शिक्षा देती है। मार्कण्डेय महापुराण में वर्णित राजा मोरध्वज की पत्नी मदालसा अपने पुत्रों में से कुछ पुत्रों को निवृत्ति मार्ग का बोध कराती है और वहीं छोटे पुत्र विक्रान्त को प्रवृत्ति मार्ग की शिक्षा देती हैं। इसी प्रकार महाभारत में भी माता सुभद्रा अभिमन्यु को, शकुन्तला माता भरत को, अंजना माता हनुमान को तथा छत्रपति शिवाजी को माता जीजाबाई आदि श्रेष्ठ संतानों के निर्माण के लिए माता की ममता, वात्सल्यता तथा श्रेष्ठ जनक के सच्चे संरक्षण व आत्मीय स्वजनों के प्रेम पूर्ण सानिध्य में सदाचार, परोपकार, सदव्यवहार, शुभ-संस्कार, विनम्रता, वीरता, धीरता, गम्भीरता, कृतज्ञता, सेवा, सत्कार, समभाव, सहभाव आदि शुभ गुणों का आधान कराती थी। इसके साथ-साथ संतानों को अक्षर ज्ञान व लिपि ज्ञान का बोध कराके गुरुकुल शिक्षा के लिए प्रेरित करती थी। प्रायः संतानों की शिक्षा प्रारम्भ होने से पूर्व उपनयन संस्कार की पावनी परम्परा रही है। जिसमें प्रायः सभी विद्वान् महर्षि मनु का मन्तव्य स्वीकार करते हुए छात्रा की न्यूनतम आयु 05 से 11 वर्ष तक उचित मानते हैं।

ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्यं विप्रस्य पन्यमे। राज्ञो बलार्थिनः षष्ठे वैश्यस्येहार्थिनोऽष्टमे।।[3]

वैज्ञानिक भी इस बात को मानते हैं कि जीवन के प्रारम्भिक 5 वर्ष की आयु के अनंतर ही बच्चों की मस्तिष्क ग्रन्थियाँ शिक्षा के लिए परिपक्व हो पाती है। मनुष्यों में विनयशीलता तथा नैतिक मूल्यों का आधान हो यही शिक्षा का मूल लक्ष्य है। उत्तमोत्तम पात्रता होने पर ही मनुष्य हर प्रकार के धन की प्राप्ति व धन से धर्म और धर्माचरण से शाश्वत सुख को प्राप्त करता है। बहुत ही प्रसिद्ध श्लोक है-

विद्या ददाति विनयं विनयाद्याति पात्राताम्। पात्रात्वाद् ध्रमाप्नोति ध्राद्धर्मं ततः सुखम्।।[4]

विनीतवेषेण प्रवेष्टव्यानि तपोवनानि।[5] गुरुकुलों के प्रति लोक में आदर भाव जाग्रत करने के उद्देश्य से राजा लोग भी स्वतः ही अपने गरिमामय राजवेष छत्र और मुकुट को उतारकर बिना अंगरक्षकों व परिचरों को साथ लिए, अतिशय विनीत भाव से आश्रम परिसर में, अपने वाहनों से उतर कर पैदल ही प्रवेश करने का प्रतिमान उपस्थित करते थे।

4. उपनयन व वेदारम्भ संस्कार –

उपनयन का शाब्दिक अर्थ गुरु के समीपस्थ होना है। **आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः। तं रात्रीस्तिड्ड उदरे बिभर्ति तं जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति देवाः।[6]** पालन-पोषण, शिक्षा एवं रक्षा का संपूर्ण दायित्व एक माँ की ही भाँति गुरु या आचार्य अनन्त धैर्य के साथ निभाता है।

गुरुकुल में प्रवेश के उपरान्त विद्यार्थी लगभग पच्चीस वर्ष की आयु तक शिक्षा ग्रहण करने के उपरान्त गृहस्थाश्रम में प्रवेश करते थे। सामान्यतः गुरुकुल में जो छात्रा चौबीस वर्ष की आयु तक अध्ययन करते थे उन्हें **वसु** ब्रह्मचारी, जो छत्तीस वर्ष की आयु तक अध्ययन करते थे उन्हें **रुद्र** ब्रह्मचारी तथा जो अड़तालीस वर्ष की आयु तक अध्ययन करते थे उन्हें **आदित्य** ब्रह्मचारी कहा जाता था। इन विद्यार्थियों में से कुछ ऐसे भी होते थे जो विशेष शिक्षा के लिए अध्ययन की सामान्य अवधि के उपरान्त प्रतिष्ठित आचार्यों के गुरुकुलों में आगे के अध्ययन के लिए प्रवेश ले लेते थे।

5. प्राचीन शिक्षा का उद्देश्य, आन्तरिक व बाह्य अनुशासन-

प्राचीन आचार्यों ने आन्तरिक अनुशासन के इस महत्वपूर्ण सत्य को शिक्षा का प्रथम आधर बनायाः- **(i) अन्तःकरण चतुष्टय-**

अन्तःकरण की प्रकृति व उसके स्वरूप को समझे बिना ज्ञान की प्रक्रिया को गति प्रदान नहीं की जा सकती है। दर्शन शास्त्र के अनुसार अन्तःकरण के चार स्वरूप हैं- मन, बुद्धि, चित्त व अहंकार। बाह्य कारणों के स्वरूप व सदुपयोग के ज्ञान से भी अधिक महत्वपूर्ण है अन्तःकरण (मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार) के स्वरूप एवं इसकी कार्यपद्धति का ज्ञान होना, क्योंकि बाह्यकरण भी अन्तःकरण के सहयोग से ही अपनी समस्त क्रियाएं सम्पन्न कर पाते हैं। जिस **मन** के मनन और उच्च विचार से उसे जीवन के उच्चतम आदर्शों को पाना है उस मन रूपी मशीनरी को यदि उसे संचालित (Operate) करना नहीं आता है तो सभी क्रियाएँ विफल हो जायेंगी। **बुद्धि-** जिस बुद्धि की सहायता से जीवन में समस्त बड़े-बड़े निर्णय करने हैं, इतने महत्वपूर्ण यन्त्र से गुरु, जीवन के प्रारम्भ में ही परिचय करा देता था क्योंकि जैसा व्यक्ति का विचार और निर्णय होता है वैसा ही उसका संसार और जीवन होता है **चित्त-** चित्त रूपी पेटिका/संग्रह (Store) में अनादिकाल से अर्जित संस्कारों का, वर्तमान के प्रबल यौगिक संस्कारों से किस प्रकार अभिभव या नाश किया जा सकता है यह भी बाल्यावस्था में ही आचार्य अपने शिष्य को सिखा देता था। **अहंकार-** अहंकार का अर्थ है व्यक्तिगत पहचान। गुरुकुल में आचार्य- **अहं ब्रह्मास्मि।[7] 'कस्य ब्रह्मचार्यसि प्राणस्य ब्रह्मचार्यसि कस्त्वाकमुपनयते काय त्वा परिददामीति'।।[8]** आदि उदात्त अहंकार, या सात्विक अहंकार से युक्त कर देता था। यह सात्विक अहंकार व्यष्टि और समष्टि का कल्याण करने वाला ही होता था। इस प्रकार **अन्तःकरण चतुष्ट्य** को संयमित कर ही व्यक्ति सद्विचार, विवेक, सदाशयता, उदारता, करुणा के उदात्त गुणों को विकसित कर अपने को एक आदर्श मानव के रूप में रूपान्तरित कर सकता है। अतः आदर्श मानव बनने के संकल्प को फलीभूत करने के लिए व्यक्ति को गुरुकुलीय शिक्षा के माध्यम से स्वयमेव ही अन्तःकरण की कार्यविधि को समझने तथा उससे भली-भांति अवगत होने का प्रयत्न करना चाहिए।

(ii) पंचकोशीय विद्या-

उपनिषदों में आत्मा का उद्भव, सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति, विकास एवं विध्वंस की गति को पंचकोष के माध्यम से समझाया गया है। ये सभी पंचकोष मानवीय चेतना को पाँच भागों में विभक्त करते हैं।

(I) अन्नमय कोश- यात्रा बाह्य हो या आन्तरिक प्रारम्भ वही से होती है जहाँ व्यक्ति खड़ा है। गुरुकुल में आने वाला छात्र अभी शरीर के धरातल (अर्थात् अन्नमय कोष) पर खड़ा है अतः अग्रिम यात्रा भी यहीं से प्रारम्भ होती है। आजकल छोटे-छोटे बच्चों को इतने बड़े-बड़े रोग उत्पन्न हो रहे हैं वे कहीं न कहीं माता-पिता के गुरुकुलीय शिक्षा के अभाव को ही दर्शाते हैं। गुरुकुल में आने पर गुरु सर्वप्रथम शारीरिक उन्नति का उपदेश एवं दीक्षा देते थे जिसके साधन हैं- सात्विक आहार, व्यवस्थित दिनचर्या और व्यायाम इससे शिष्य का अन्नमय कोष पुष्ट होता था।

(II) प्राणमय कोश- सभी इन्द्रियों में ओज, तेज, स्फूर्ति, उत्साह, प्रसन्नता भर देने वाला यह प्राणमय कोष। इस कोष की शक्ति का साधन है प्राणायाम जिसका अनुष्ठान प्रातः-सायं गुरुकुल में कराया जाता है।

(III) मनोमय कोश- मनोमय कोष की तुष्टि होती है उदात्त विचारों से, सात्विक विचारों से, सकारात्मक विचारों से, एकाग्रता से और इन सबका साधन है- प्रत्याहार और धरणा। आर्ष ग्रन्थों का अध्ययन तथा ओंकार, गायत्री आदि पवित्र मन्त्रों का जाप भी मनोमय कोष को तुष्ट व पुष्ट करता है। गुरुकुलों में शास्त्र स्मरण कराना आदि भी एकाग्रता को बढ़ाने के लिए दिव्य साधन हैं। यही कारण रहा होगा कि वाल्मीकि जी ने बचपन में ही लव-कुश को पूरी रामायण याद करा दी थी। 24000

(IV) विज्ञानमय कोश- इस कोष के सबल होने से व्यक्ति में तृप्ति, सन्तोष, तुष्टि का भाव आता है। ऐसा व्यक्ति सतत सन्तुष्ट रहता हुआ सदैव आत्म-स्पर्धा में जीता है। इस कोष को विकसित करने का साधन है- ध्यान, जो गुरुकुल में स्वयं गुरु अपने आचरण से शिष्य को अभ्यास कराता है।

(V) आनन्दमय कोश- यह मानवीय चेतना के उच्चतम विकास का सर्वोत्कृष्ट स्थान है। चेतना के इसी स्तर पर साधक **''अहं ब्रह्मास्मि''।[9]** जैसे महावाक्यों की अनुभूति करता है। धारणा, ध्यान समाधि ही इसके दिव्य साधन हैं। आजकल के छात्रों के लिए तो ये सब बातें मायालोक जैसी प्रतीत होती है लेकिन गुरुकुलीय शिक्षा में गुरु, शिष्य की चेतना को अपने तप-त्याग और बलिदान के द्वारा देवों का भी दर्शनीय बनाता था इन पाँच अवदानों से परिचय कराते हुए गुरु, शिष्य की दिव्यमूर्ति अपने हाथों से (गढ़ता) निर्मित करता था। अर्थात् शरीर की **पुष्टि**, प्राण की **शक्ति**, मन की **तुष्टि**, बुद्धि की **तृप्ति** व आत्मा की **मुक्ति** यही आन्तरिक विकास है।

(iii) अष्टांयोग-

अष्टांयोग के अनुष्ठान से अशुद्धि का क्षय और ज्ञान की दीप्ति नित्य-निरन्तर बढ़ती जाती है और अन्ततः पूर्ण-विवेकी होकर व्यक्ति मानव से महामानव तथा नर से नारायण हो जाता है। स्वामी विवेकानन्द जी ने इसी स्थिति को आत्मसात करने के लिए उपनिषदों के इस उद्घोष को दोहराया था-**''उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत''।[10]** आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार और धारणा के अभ्यास से शिष्य की बुद्धि इतनी तीव्र-सूक्ष्म और एकाग्र हो जाती थी कि वह कुछ ही वर्षों में एक नहीं अनेक विद्याओं का ज्ञाता हो जाता था। गुरुकुलीय शिक्षा में नियमों को व्रत और यमों को महाव्रत व सर्वथा, सर्वदा पालन करने योग्य बताया है-**व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम्, दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते।[11]** संपूर्ण ज्ञान की देवी सरस्वती का कमल के फूल पर या हंस पर बैठना इस बात को दर्शाता है कि विद्या केवल पवित्र अन्तःकरण में ही ठहरती है। कमल सदा कीचड़ से ऊपर उठकर रहता है और हंस नीर-क्षीर विवेकी होता है। महर्षि दयानन्द ने सभी विद्याएं मात्र तीन वर्ष में पूरी कर डाली थी और वर्तमान में मेरे गुरुदेव परम पूज्य स्वामी रामदेव जी महाराज इसके साक्षात् उदाहरण हैं।

(iv) संस्कार सिद्धान्त-

संस्कारों के आधर पर दी गई शिक्षा के द्वारा ही छात्रों के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक स्तर को निखारा जा सकता है, यही कारण रहा कि गुरुकुलीय शिक्षा में संस्कार प्रक्रिया की प्रयोगात्मक विधि के साथ **सोलह संस्कारों** के ज्ञान को भी अतिशय वरीयता दी जाती रही।

संस्कारों की महिमा इतनी महान् है कि इस विधा से व्यक्ति का आमूल-चूल परिवर्तन हो जाता है। माँ की अनन्त वत्सलता में पल रहा बालक एक-दम गुरुकुल के इतने कठोर जीवन को कैसे अपना पायेगा यह प्रश्न सहज ही किसी के भी मन में आ सकता है। परन्तु इसका उत्तर सुनकर आपकी भी आत्मा तृप्त होने लगेगी-

आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः।

तं रात्रीस्तिस्रु उदरे बिभर्ति तं जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति देवाः।[12]

अर्थात् आचार्य भी इस बालक को माँ की ही भाँति अपने गर्भ में धारण करता है। संसार के समस्त दुःख, कष्टों व दूषित वातावरण का जहाँ स्पर्श भी ना हो ऐसे अपने दिव्य ज्ञान के कवच में सुरक्षित रखता है। इसीलिए गुरुकुल में शिष्य को अन्तेवासी कहकर सम्बोधित किया जाता है अर्थात् जैसे माँ के अन्तर में बालक निवास करता था वैसे ही यहाँ गुरु के अन्तर में निवास करता है और इस गर्भ से जिस दिन इसका जन्म होता है उस दिन देवता भी इसका दर्शन करने आते हैं उस दिन यह द्विज कहलाता है अर्थात् दोबारा जन्मा हुआ। राम, कृष्ण, महर्षि दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द और वर्तमान में मेरे गुरुदेव ऐसे ही द्विज हैं। गुरु-शिष्य के सम्बन्ध की इतनी उदात्त उपमा भारत के सिवा किसी अन्य देश में मिलना अत्यन्त दुर्लभ है गुरुकुल में नवागन्तुक शिष्य के लिए गुरु के आश्वासन की दिव्यता देखिये-

मम व्रते ते हृदयं दधमि मम चित्तं अनुचित्त ते अस्तु।

मम वाचं एकमना जुषस्व, बृहस्पतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यम्।।[13]

अर्थात् तेरे हृदय को मैं अपने हृदय मे लेता हूँ, तेरे चित्त को अपने चित्त में अर्थात् दो आत्माएं मिलकर आज एकमना हो रही हैं। **गुरु, शिष्य के दिल-दिमाग के उत्कृष्ट निर्माण की जिम्मेदारी अपने हाथ में ले रहे हैं और यह वैदिक उद्घोषणा वह भरी सभा में सबके समक्ष कर रहे हैं। शिक्षा के इससे ऊँचे उद्देश्य की क्या कोई कल्पना भी कर सकता है?** जिस प्रकार यहाँ गुरु किसी के दिव्य व्यक्तित्व निर्माण की इतनी बड़ी जिम्मेदारी ले रहा है, उसी प्रकार यज्ञोपवीत धरण करवाकर उसके तीन धगों के माध्यम से शिष्य को भी ऋषिगण, पितृगण व देवगण से परिचय करवाकर, मेखला बाँधकर अर्थात् कमर कस कर उसे भी इसी परम्परा के निर्वहन के लिए तैयार किया जा रहा है। यह है 16 संस्कारों की पावनी परम्परा जो केवल गुरुकुल में सिखायी जाती है।

बाह्य अनुशासन-

कठोर अनुशासन का पालन तथा पवित्र आचरण को बनाये रखते हुए गुरु या आचार्य की सेवा करना व उनके प्रति ऐकांतिक श्रद्धा भाव रखना, पृथ्वी पर शयन करना, ब्रह्ममुहूर्त में उठना सूर्योदय पूर्व संध्या वंदन व प्राणायाम करना, आश्रम का रख-रखाव करना, भोजन प्रबन्ध् करना, साधरण वेश-भूषा धरण करना, यज्ञादि करना तथा समान पठन-पाठन की चर्या सभी के लिए अनिवार्य हुआ करती थी। गुरुकुल के छात्रों को भिक्षावृत्ति की शिक्षा भी दी जाती थी ताकि भावनात्मक रूप से समाज के साथ जुड़े रहें। गुरुकुलों की शिक्षा निःशुल्क हुआ करती थी। इस प्रकार प्रकृति के उन्मुक्त वातावरण में सार्वभौमिक सत्ता का दिग्दर्शन करते हुए सार्वभौमिक विश्व बंधुत्व की भावना के साथ देश-काल की सीमा से परे इस व्यावहारिक शिक्षा से शिक्षार्थियों का आभ्यान्तरिक ज्ञान का आचरण निखर उठता था अर्थात् एक दिव्य व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति गुरुकुलों में होती थी। गुरुकुलों में तैयार होने वाली ये दिव्य प्रतिभाएं संसार के विभिन्न क्षेत्रों में अपनी-अपनी योग्यता और रुचि के अनुसार दिव्य नेतृत्व प्रदान करती थी। गुरुकुल के महान् गुरुओं की इस महति परम्परा के कारण यह भारत देश ही विश्व में गुरु कहलाता था। पूरे विश्व के दिव्य निर्माण की जिम्मेदारी भारत पर ही थी, आज भी है और सदा रहेगी। इसी विराट् जिम्मेदारी का निर्वहन आज मेरे गुरुदेव व श्रद्धेय स्वामी रामदेव जी महाराज हंस-हंसकर प्राणार्पण से कर रहे हैं।

6. विद्याओं के प्रकार -

गुरुकुलों में सभी प्रकार की विद्याओं का प्रशिक्षण दिया जाता था। जैसे कि- आन्वीक्षिकी, वेदत्रायी, वार्ता तथा दण्डनीति ये चार विद्याएँ लोक-व्यवहार को स्थिर करने वाली हैं **इमास्तु चतङ्रो विद्याः पृथक्प्रस्थानाः प्राणभृतामनुग्रहायोपदिश्यन्ते। यासां चतुर्थीयमान्वीक्षिकी न्यायविद्या। प्रदीपः सर्वविद्यानामुपायः सर्वकर्मणाम्। आश्रयः सर्वधर्माणां र्विद्योद्देशे प्रकीर्त्तिता।।[14]** इसी के साथ **अंगिरस** (गीत, नृत्य तथा ललित कला), **सर्पविद्या** (विष विज्ञान), **देवजनविद्या** (मानव जीवन पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों का अध्ययन), **मायाविद्या** (अनार्यों की गतिविधियों तथा उनके प्रतिरोध के उपाय), **राशिविद्या** (गणित ज्ञान), **देव विद्या** (प्राकृतिक घटनाओं का आकलन व उससे बचने के उपाय), **निधि विद्या** (धन संबंधी), **एकायन** (नीतिशास्त्र), **ब्रह्मविद्या** (आध्यात्मिकता), **भूतविद्या** (प्राणिशास्त्र), **क्षत्रविद्या** (युद्धकौशल), **नक्षत्रविद्या** (पिण्डीय संरचना व विकरण) व वाकोवाक्य आदि सभी विद्याओं की सम्पूर्ण शिक्षा दी जाती रही।

इनके अतिरिक्त **व्यावसायिक शिक्षा, औद्योगिक शिक्षा, चिकित्साशास्त्र, कृषि विज्ञान तथा पशुपालन एवं पशु चिकित्सा** विषयक शिक्षा भी दी जाती रही। इसी प्रकार प्रकार खगोल विज्ञान के द्वारा नक्षत्रों व पिण्डों का ज्ञान तथा **विज्ञान व तकनीकी** के अन्तर्गत विभिन्न विषयों की प्रयोगात्मक शिक्षा दी जाती थी।

इन्हीं विषयों के आधार पर गुरुकुलों में कुछ प्रमुख विभाग स्थापित किये गए जो निम्न प्रकार से रहे-

1. अग्नि स्थान (यज्ञादि कर्मकाण्डों के लिए)

2. ब्रह्म स्थान (आत्मविद्या के लिए)

3. विष्णु स्थान (सृष्टिरचना विज्ञान)

4. महेन्द्र स्थान (युद्धकौशल व सैनिक शिक्षा)

5. विवस्वत् स्थान (ज्योतिष/नक्षत्र विद्या)

6. सोम स्थान (उद्भिज-विज्ञान)

7. गरुड़ स्थान (यातायात)

8. कार्तिकेय स्थान (व्यूह-रचना व आयुध्-संधान)

9. विश्वकर्मा स्थान (शिल्प व स्थापत्य कला)

10. इंद्र स्थान (राजनीति/अर्थनीति शिक्षा)

11. धन्वन्तरि-स्थान (आयुष व भैषज विज्ञान)

12. अंगिरस स्थान (गीत, संगीत व ललित कला) आदि-आदि।

आधुनिक विश्वविद्यालयों में विभागों की संरचनाओं को इसी परिप्रेक्ष्य में देखा जा सकता है।

चौंसठ कलाएँ-

शुक्राचार्य के **नीतिसार** नामक ग्रंथ के चौथे अध्याय के तीसरे प्रकरण में 64 कलाओं का वर्णन मिलता है। उनके अनुसार कलाएँ अनन्त हैं उन सब के नाम नहीं गिनाये जा सकते परन्तु उनमें 64 कलाएँ मुख्य हैं। कला का लक्षण बताते हुए आचार्य लिखते हैं कि जिसको एक मूक (गूँगा) व्यक्ति भी, जो वर्णोच्चारण भी नहीं कर सकता, वह भी सीख सके, वह **'कला'** है।

श्रीवसवराजेंद्र विरचित और जयमंगल तथा शुक्रनीतिसार के अनुसार 64 कलाएँ निम्न प्रकार से हैं-

1. हाव-भाव आदि के साथ गति को नृत्य कहा जाता है। 2. अनेक प्रकार के वाद्यों का निर्माण करने और उनके बजाने का ज्ञान। 3. स्त्री और पुरुषों को वस्त्र एवं अलंकरण सुचारु रूप से पहनाना। 4. अनेक प्रकार के रूपों का आविर्भाव करने का ज्ञान। 5. शैया और आस्तरण (बिछौना) सुंदर रीति से बिछाना और पुष्पों को अनेक प्रकार से गूँथना। 6. द्यूत (जूआ) आदि अनेक क्रीड़ाओं से लोगों का मनोरंजन करना। 7. अनेक प्रकार के आसनों द्वारा सुरतक्रीड़ा का ज्ञान। 8. विविध प्रकार के मकरन्दों (पुष्प रस) से आसव, मद्य आदि की कृति। 9. शल्य (पादादि अंग में चुभे काँटे) की पीड़ा को अल्प कर देना या शल्य क्रिया से अंगों को निकाल देना, शिरा (नाड़ी) और फोड़े आदि की चीर-फाड़ करना। 10. हींग आदि रस (मसाले) से युक्त अनेक प्रकार के अन्नों को पकाना। 11. वृक्ष, गुल्म, लता आदि को लगाने, उनसे विविध प्रकार के फल, पुष्पों को उत्पन्न करने एवं उन वृक्षादि का अनेक उपद्रवों से संरक्षण करने की कृति। 12. पत्थर, सोने-चाँदी आदि धातुओं को खोदना, उन धातुओं की भस्म बनाना। 13. सभी प्रकार के इक्षु (ईख) से बनाये जा सकने वाले पदार्थ-जैसे रावा, गुड़, खाँड़, चीनी, मिश्री, कन्द आदि बनाने का ज्ञान। 14. सुवर्ण आदि अनेक धातु और अनेक औषधियों को परस्पर मिश्रित करने का ज्ञान। 15. मिश्रित धातुओं को उस मिश्रण से अलग-अलग कर देना। 16. धातु आदि के मिश्रण का अपूर्व विज्ञान। 17. लवण (नमक) आदि को समुद्र या मिट्टी आदि पदार्थों से निकालने का विज्ञान। 18. पैर आदि अंगों के विशिष्ठ संचालनपूर्वक (पैंतरा बदलते हुए) शस्त्रों का लक्ष्य स्थिर करना और उनका चलना। 19. शरीर की सन्धियों (जोड़ों) पर आघात करते हुए या भिन्न-भिन्न अंगों को खींचते हुए दो मल्लों (पहलवानों) का युद्ध (कुश्ती)। 20. कृत और प्रतिकृत आदि अनेक तरह के अति भयंकर बाहु (मुष्ठि) प्रहारों से अकस्मात् शत्रु पर झपटकर उसको पकड़कर रगड़ देने आदि प्रकारों से जो युद्ध किया जाता है, उसे 'निपीड़न' कहते हैं और शत्रु द्वारा किये गये ऐसे 'निपीड़न' से अपने को बचा लेने का नाम 'प्रतिक्रिया'। 21. अभिलक्षित देश (निशाने) पर विविध यंत्रों से अस्त्रों को फेंकना और किसी (बिगुल, तुरही आदि) वाद्य के संकेत से व्यूहरचना (किसी खास तरीके से सैन्य को खड़ा करने) की क्रिया करना। 22. हाथी, घोड़े और रथों की विशिष्ठ गतियों से युद्ध का आयोजन करना। 23. विविध प्रकार के आसन (बैठने का प्रकार) एवं मुद्राओं (दोनों हाथों की अँगुलियों से बनने वाली अंकुश, पद्म, धेनु आदि की आकृतियों) से देवताओं को प्रसन्न करना। 24. सारथ्य-रथ हाँकने का काम (कोचवानी) एवं हाथी, घोड़ों को अनेक तरह की गतियों (चालों) की शिक्षा देना। 25. मिट्टी, लकड़ी, पत्थर और पीतल आदि धतुओं से बर्तनों का बनाना। 26. चित्रों का आलेखन। 27. तालाब, बावड़ी, कूप, प्रासाद (महल और देवमन्दिर) आदि बनाना और भूमि (ऊँची-नीची) का सम (बराबर) करना। 28. घटी (घड़ी) आदि यंत्रों के माध्यम से समय ज्ञात करना। 29.

अनेक वाद्यों का निर्माण करना। 30. कतिपय रंगों के अल्प, अधिक या सम संयोग (मिलावट) से बने विभिन्न रंगों से वस्त्र आदि वस्तुओं का रँगना। 31. जल, वायु और अग्नि के संयोग से उत्पन्न वाष्प (भाप) के निरोध (रोकने) से अनेक क्रियाओं का सम्पादन करना। 32. नौका, रथ आदि जल-स्थल के आवागमन के साधनों का निर्माण करना। 33. सूत्र, सन आदि तन्तुओं से रस्सी का बनाना। 34. अनेक तन्तुओं से पटबन्ध (वस्त्र) की रचना करना। 35. रत्नों की पहचान और उनमें वेध (छिद्र) करने का क्रिया ज्ञान। 36. सुवर्ण, रजत आदि के याथात्म्य (असलीपन) का जानना। 37. नकली सोने-चाँदी और हीरे-मोती आदि रत्नों को निर्माण करने का विज्ञान। 38. सोने-चाँदी के आभूषण बनाना एवं लेप आदि (मीनाकारी) करना। 39. चमड़े को मुलायम करना और उससे आवश्यक उपयोगी सामान तैयार करना। 40. पशुओं के शरीर पर से चमड़ा निकालकर अलग करना। 41. गौ, भैंस आदि को दुहने से लेकर दही जमाना, मथना, मक्खन निकालना तथा उससे घी बनाने तक की सब क्रियाओं का जानना। 42. कुर्ता आदि कपड़ों को सीना। 43. जल में हाथ, पैर आदि अंगों की सहायता से विविध प्रकार से तैरना। 44. घर के बर्तनों को माँजने का ज्ञान। 45. वस्त्रों का संमार्जन (अच्छी तरह धोकर) साफ करना। 46. क्षौर कर्म (हजामत बनाना)। 47. तिल, तीसी, रेंड़ी आदि तिलहन पदार्थ और मांसों में से तेल निकालने की कृति। 48. हल चलाना जानना। 49. पेड़ों पर चढ़ना जानना। 50. मनोनुकूल (दूसरों की इच्छा के अनुसार उसकी) सेवा करने का ज्ञान। 51. बाँस, ताड़, खजूर, सन आदि से पात्र (टोकरी, झाँप आदि) बनाना। 52. काँच के बर्तन आदि सामान बनाना। 53. जल से संसेचन (अच्छी तरह खेतों को सींचना)। 54. संहरण (अधिक जल वाली या दलदल वाली भूमियों से जल को बाहर निकाल डालना अथवा दूर से जल को आवश्यक स्थान पर ले जाना)। 55. लोहे के अस्त्र-शस्त्र बनाने का ज्ञान। 56. हाथी, घोड़े, बैल और ऊँटों की पीठ-सवारी के उपयुक्त प्ल्याण (जीन, काठी) बनाना। 57. शिशुओं का संरक्षण (पालन)। 58. धरण (पोषण) करना। 59. बच्चों के खेलने के लिये विभिन्न प्रकार के खिलौने बनाना। 60. अपराधियों को उनके अपराध के अनुसार ताड़ने (दण्ड देने) का ज्ञान। 61. भिन्न-भिन्न देशों की लिपि को सुन्दरता से लिखना। 62. पान की रक्षा करना-ऐसा उपाय करना कि जिससे पान बहुत दिनों तक न सूखने पाये, न गले-सड़े। 63. आदान, किसी काम को करने में आशुकारित्व (जल्दी-फुर्ती से करना) 'आदान' कहा जाता है। 64. प्रतिदान, और उस काम को चिरकाल (बहुत समय) तक करते रहना 'प्रतिदान' है।

वाल्मीकि रामायण के अयोध्या काण्ड के 43वें सर्ग में भरद्वाज जी के आश्रम से चित्रकूट की तरफ जाते समय रास्ते में यमुना में जल की अधिकता के कारण उसे पार करना अति कठिन था तब दोनों भाइयों ने वन से कुछ लकड़ियां एकत्रित करके एक बेड़ा बनाकर बड़ी कुशलता से यमुना को पार किया, यह गुरुकुलीय शिल्प विद्या के विज्ञान का प्रखर प्रमाण है।

चिन्तामापेदिरे सर्वे नदीजलतितीर्षवः। तौ काष्ठसघ्घाटमथो चक्रतुः सुमहाप्लवम्।।[15]

तथा इसी प्रकार चित्रकूट पहुँचकर राम-लक्ष्मण के द्वारा सुन्दर पर्णशाला निर्मित्त करना, यह दर्शाता है कि राजकुमार होते हुए भी उन्होंने गुरुकुल में भवन-निर्माण विद्या की भी शिक्षा प्राप्त की थी-

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सौमित्रिर्विविधन् द्रुमान्। आजहार ततश्चक्रे पर्णशालामरिन्दमः।।[16]

प्राचीन काल में शिक्षा का पाठ्यक्रम इतना व्यापक था कि इसमें प्रायः सभी विषयों का समावेश हो जाता था। इसके साथ ही शिक्षकों की सर्वग्राही प्रज्ञा का भी सहज आँकलन हो जाता है जब वे विश्व के अन्य भागों से आए छात्रों को प्रचलित पाठ्यक्रम के अतिरिक्त उनके रीति-रिवाजों के अनुरूप ही शिक्षित किया करते थे। **एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः। स्वं स्वं चरित्रां शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः।[17]**

आजकल कुछ संस्थान तो ऐसे है जहाँ हर वर्ष सैकड़ों विद्यार्थी इसलिए आत्महत्या कर लेते हैं कि कॉम्पीटिशन में उनका रैंक ऊपर नहीं आया उन विद्यार्थियों को यह अवगत नहीं कराया जाता कि इसके अतिरिक्त भी विभिन्न दिशाओं में उड़ान भरने के लिए उसके समक्ष यह खुला आसमान है।

7. नारी शिक्षा –

प्राचीन काल में शिक्षा के संबंध में स्त्री और पुरुष के नाम पर सामान्यतः कोई भेद नहीं किया जाता था, परन्तु यह अवश्य था कि लड़कों व लड़कियों के गुरुकुल अलग-अलग हुआ करते थे। वैदिक साहित्य के वर्णन के अनुसार उच्चतम शिक्षा में पुरुष **ऋषि, महर्षि, राजर्षि, व ब्रह्मऋषि** तथा स्त्रियाँ उच्चतम शिक्षा प्राप्त कर **ब्रह्मावादिनी** तथा **ऋषिका** की संज्ञा ग्रहण करती थीं। वैदिक साहित्य के जगत् में ब्रह्मवादिनी विदुषी गार्गी का नाम अत्यंत प्रसिद्ध है। इनके पिता का नाम वचक्रु था, उनकी पुत्री होने के कारण इनका नाम **''वाचक्नवी''** पड़ गया। गर्ग गोत्रा में उत्पन्न होने के कारण लोग इन्हें **गार्गी** भी कहते थे। बृहदारण्यकोपनिषद् में इनके शास्त्रार्थ का विस्तृत विवरण प्राप्त होता है। ऋषि दीर्घतमा की माता **''ममता''**, **''विश्ववारा''** **''अपाला''**, **''घोषा''** ये सब ऋषिकाएं हैं। **''सूर्या''**, **''रोमशा''**, **''शाश्वती''** आदि विदुषियाँ विभिन्न वैदिक ऋचाओं की द्रष्टा ऋषिका होने का गौरव प्राप्त कर चुकी हैं।

बृहदारण्यकोपनिषद् में **मैत्रेयी** की गूढ़ आध्यात्मिक विषयों में अपने पति से जिज्ञासा और याज्ञवल्क्य द्वारा इनके शंका-समाधन का विषद् वर्णन मिलता है।

इनके अतिरिक्त **रोमशा, लोपामुद्रा, जुहू, वागांभृणी, कद्रु, पौलमी, जरिता, श्रद्धा, सर्पराज्ञी, अदिति, आत्रेयी, उर्वशी, यमी, इंद्राणी, सावित्री, देवजामी, नोध, अकृष्टभाषा, सिकतानिबावरी, गोपायनी** आदि विदुषियों का भी संदर्भ वैदिक ग्रन्थों में मिलता है। **महर्षि शौनक** ने अपने ग्रंथ बृहत्देवता (2/84-86)में सत्ताइस ऋषिकाओं के नामों का उल्लेख किया है। **(घोषा गोध विश्ववारा अपालोपनिषत्। ब्रह्मजाया जुहूर्नाम अगस्त्यस्य स्वसादितिः।। इंद्राणी चेन्द्रमाता च सरमा रोमशोर्वशी। लोपामुद्रा च नद्यश्च यमी नारी च शाश्वती।। श्रीर्लाक्षा सार्पराज्ञी वाक्श्रद्धा मेध च दक्षिणा। सूर्या च सावित्री च ब्रह्मवादिन्य ईरिताः।।)।[18]**

पाणिनी ने ऐसे छात्रावासों का उल्लेख किया है जिनमें छात्राएँ रहती थी **छात्रयादयः शालायाम्।[19]** (पाणिनी-4/2/86)। स्त्रियों के महत्व को रेखांकित करते हुए **स्कन्दपुराण** के **कौमारिका खण्ड** (23/47) में यह स्पष्ट किया गया है कि एक बेटी दस पुत्रों के बराबर होती है। जो भी अच्छे परिणाम एक व्यक्ति को दस पुत्रों के पालन करने से प्राप्त हो सकते हैं, वही सभी परिणाम अकेली बेटी को जन्म देने से उसे प्राप्त हो जाते हैं। **(दशपुत्रसमा कन्या दशपुत्रान्प्रवर्धन्य, यत्फलं लभते मर्त्यस्तल्लभ्यं कन्ययैकया)।[20]** उपर्युक्त विवरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि जब आचार्य शघङ्कर ने माहिष्मती नगरी में सिर पर कलश रखे पनखट की तरपफ जाने वाली पानिहारिनों से मूर्धन्य मीमांसक पण्डित मण्डन मिश्र का पता पूछा तो उन ग्राम बालाओं ने परिहास में शुद्ध संस्कृत श्लोकों में यह बताया कि जिस द्वार पर पिंजड़ों में बैठी मैनाएँ आपस में जगत नित्य है, या अनित्य? अथवा वेद स्वतः प्रमाण है, या परतः? इस विषय पर चर्चा करती हुई दिखाई दें, वही पण्डित जी का घर है **(जगद्ध्रुवं स्यात् जगद्ध्रुवं स्यात्, क्रीरार्घैना यत्रा गिरो गिरन्ति। द्वारस्थनीडान्तरसन्निरुद्धा, जानीहि तन्मण्डन-पंडितौकः।। स्वतः प्रमाणं परतः प्रमाणं, क्रीरार्घैना यत्रा गिरो गिरन्ति। द्वारस्थनीडान्तरसन्निरुद्धा, जानीहि तन्मण्डनपंडितौकः)।।[21]** इसी के साथ मण्डन मिश्र जी की पत्नी शारदा देवी भी कितनी बड़ी विदुषी थी इसका प्रमाण इस बात से मिल जाता है कि उस युग के प्रज्ञापुरुष आदि गुरु शंकराचार्य जी ने उन्हें अपने शास्त्रार्थ की निर्णायिका के रूप में सुशोभित किया। स्त्री शिक्षा पर चर्चा करते समय राजा शारदानन्द की पुत्री व महाकवि कालिदास की धर्मपत्नी विद्योत्तमा का उल्लेख करना समीचीन होगा, जिसने अनेक समकालीन विद्वानों को शास्त्रार्थ में परास्त कर अपनी अपूर्व मेध का परिचय कराया था।

''पृथ्वीराज रासौ'' के दृष्टान्त अनुसार विदुषी राजकुमारी **संयोगिता** ने ''मदना'' आचार्या द्वारा संचालित कन्या गुरुकुल में लगभग पाँच सौ सहपाठिनों सहित शिक्षा ग्रहण की थी। यही नहीं बल्कि दक्षिण भारत के मध्यकालीन मंदिरों में निर्मित पत्र आदि लिखते हुए महिलाओं की मूर्तियाँ वस्तुतः प्राचीन भारत में स्त्री शिक्षा का पुरातात्विक प्रमाण ही प्रस्तुत करती हुई दिखती हैं:-

विलियम वार्ड की लन्दन से प्रकाशित पुस्तक **'दि हिन्दूज'** के चतुर्थ खण्ड (हिस्ट्री लिट्रेचर एण्ड माइथोलाजी), जिसका प्रकाशन सन् 1811 में हुआ था, में यह उल्लिखित है कि बंगाल के नशीपुर के ब्राह्मण **जशोमत राय** की धर्मपत्नी **हती विद्यालंकार** (मूल नाम-रूपपंजरी), जो कि उच्च शिक्षा सम्पन्न थी, ने **सन् 1805** में नारियों की उच्च शिक्षा के लिए बनारस (भदैनी) में एक विद्यालय चतुष्पाठी खोला था, वहीं सन् 1835 में अंग्रेजी शिक्षा नियम के लागू होने के पश्चात् सावित्री बाई फूले ने अपने पति ज्योति राव (बा) फूले व सहपाठिन सगुनबाई के सहयोग से सन् 1848 में पुणे के भिडवेडा में महिलाओं के लिए एक विद्यालय की स्थापना की थी। इस विद्यालय की स्थापना से पूर्व सावित्री बाई फूले ने अहमदनगर व पुणे के मिशनरी संस्थानों से शिक्षण-प्रशिक्षण प्राप्त किया था।

8. सभी वर्णों के लिए शिक्षा -

प्रायः यह संदेह प्रकट किया जाता है कि प्राचीन भारत में केवल ब्राह्मणों को ही शिक्षा प्राप्त करने का, विशेष रूप से वेद अध्ययन का अधिकार था। जबकि इसके विपरीत वाजसनेयी संहिता में स्पष्ट रूप से वैदिक शिक्षा के अधिकारी चारो वर्णों को माना गया **है। यथेमां वाचघङ्कल्याणीमावदानि जनेभ्यः। ब्रह्म राजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय च।[22]** यही नहीं बल्कि इसके प्रमाण के रूप में ऐतरेय ब्राह्मण के रचयिता **महिदास** व उपनिषद् के ऋषि **रैक्व** का उल्लेख किया जा सकता है। **वेदव्यास** जी की माता भी मत्स्य जाति के मुखिया की पुत्री रही थी। **संस्कार गणपति** में तो स्पष्ट रूप से **शूद्रों के लिए उपनयन** का विधान भी दिया गया है। सामान्यतया यह भी प्रचारित किया जाता है कि शूद्रों को यज्ञ करने का अधिकार नहीं था, किंतु इसके विपरीत **शतपथ ब्राह्मण** में शूद्र को यज्ञकर्त्ता के रूप में प्रस्तुत करने का मात्रा दृष्टांत ही नहीं मिलता है, अपितु उन्हें कैसे संबोधन करना चाहिए इसके यथावत शब्द का भी वर्णन किया गया है। मध्य काल में चिकित्सा शास्त्र के मूर्धन्य विद्वान् **जीवक** सालावती नामक दासी का पुत्रा था।

इस प्रकार जो सर्व कल्याणकारी उदार शिक्षा व्यवस्था के उपरान्त भी छात्रों की अभिरुचियाँ अपने वर्णों, स्वभावों, संस्कारों तथा परम्परागत व वंशानुगत विषयों पर दृढ़ होती थी। इसलिए आचार्य विद्यार्थी की प्रवृत्ति, रुचि सामर्थ्य व तेजस्विता का सम्यक् मूल्यांकन करते हुए ही उनके पाठ्यविषयों का सम्यक् निर्धारण किया करते थे। कदाचित् इसका आशय यह कभी नहीं होता था कि उस विद्यार्थी का ज्ञान किसी भी प्रकार से अपरिपक्व व उपेक्षित रह जाए। राजा भोज के राज्य की यह घटना अत्यन्त प्रसिद्ध है। एक बार की बात है कश्मीर देश से आए कोविंद नामक विद्वान् जो राजा भोज के राज्य में ठहरना चाहते थे। परन्तु उनके ठहरने का कोई स्थान नहीं मिला। उन्होंने राजा से याचना करते हुए कहा कि मैं बहुत ही विद्वान् हूँ। आप मुझे ठहरने का स्थान दीजिए। राजा मुस्कुराये और सैनिकों को आदेश दिया कि मेरे राज्य में जो मूर्ख प्रतीत हो उसको ढूँढकर मेरे समक्ष उपस्थित करो। जिससे उसका आवास खाली कराकर कविवर कोविंद को दिया जा सके। सैनिकों ने खूब खोजबीन की परन्तु कोई मूर्ख नहीं मिला अन्त में एक जुलाहे को देखा और यह विचार करके कि यह मूर्ख ही होगा। उसे पकड़कर राजा के समक्ष प्रस्तुत किया, राजा ने उससे कहा कि आप नगर छोड़कर चले जाएं क्योंकि आपके घर में श्रेष्ठ कविवर कोविंद को आवास देना है। इस पर वह तंतुवाय (जुलाहा) अपनी मेध से तत्क्षण एक श्लोक राजा के समक्ष प्रस्तुत किया-

काव्यं करोमि नहि चारुतरं करोमि। यत्नात्करोमि यदि चेत् चारुतरं करोमि।

भूपाल मौलि मणि मण्डित पादपीठ हे साहसांक!
कवयामि वयामि यामि।।[23]

अर्थात् हे राजन्! मैं काव्य करता हूँ, पर बहुत सुंदर ढंग से नहीं करता हूँ, किन्तु यदि प्रयत्नपूर्वक करता हूँ तो अच्छी

प्रकार करता हूँ। आपके चरणों में जब अधीनस्थ राजागण सिर झुकाते हैं तो उनकी मणियों की चमक से आपकी पादुकापीठ जगमगा उठती है। हे राजन्! मैं तो काम करते कविता भी कर लेता हूँ। अब आप ही बताए कि मैं कविता करूं या कपड़ा बुनूं या फिर राज्य से चला जाऊँ। तंतुवाय का तर्कपूर्ण उत्तर सुनकर राजा भोज को अतिप्रसन्नता हुई।

राजा भोज से सम्बन्धित एक घटना लोक प्रचलित है जिसमें राजा भोज वन में भ्रमण कर रहे थे। वहीं एक लकड़हारा सिर पर लकड़ियों का बोझ लेकर नगर की ओर जा रहा था। लकड़ियों के भार से उसका शरीर पसीने से लथ-पथ हो गया था। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि बोझ बहुत भारी है। जिसके कारण वह लकड़हारा पीड़ित हो रहा है। राजा को उस पर दया आयी और उन्होंने उससे पूछा- **किं ते भारं बाधति?** राजा के इस अशु (वाक्य सुनकर अपना कष्ट प्रकट करते हुए कहा- **भारं न बाधते राजन् बाधती तु बाधते।[24]** हे राजन! यह बोझ मुझे इतना कष्ट नहीं दे रहा जितना आपके द्वारा **बाधते** पद के स्थान पर **बाधती** अशुद्ध पद का प्रयोग पीड़ित कर रहा है। इससे यह स्पष्ट होता है संस्कृत साहित्य, व्याकरण आदि का ज्ञान सामान्य लोगों को भी होता था जिसका ज्ञान उसे राजा के सामने भी निर्भीकता के साथ उत्तर देने का सामर्थ्य प्रदान करता था। यह प्राीचन गुरुकुलीय शिक्षा का श्रेष्ठतम उदाहरण है।

यही नहीं बल्कि आधुनिक कालखण्ड में **'ब्यूटीफुल ट्री'** नामक पुस्तक में **धर्मपाल जी** ने अँग्रेजी शिक्षा पद्धति प्रारम्भ होने से पूर्व **थॉमस मुनरो** द्वारा कराये गए सर्वेक्षण के आधर पर यह उल्लिखित किया है कि मद्रास प्रांत में गाँव-गाँव में पाठशालाएँ थीं तथा उन पाठशालाओं में **तीस प्रतिशत दलित कहे जाने वाले वर्ग के शिक्षक कार्यरत थे और साठ प्रतिशत से भी अधिक पिछड़े वर्ग व शूद्र कही जाने वाली जातियों के छात्र एवं छात्रा, इनमें शिक्षा ग्रहण करते थे।** इसी अनुरूप **जी. एल. प्रेडरगाष्ट** (सन् 1820), **विलियम एडम** (सन 1838) एवं **डॉ. जी. डब्ल्यू लिटनर** (सन 1882) द्वारा प्रस्तुत बम्बई प्रेसिडेन्सी, बंगाल-बिहार एवं पंजाब से सम्बन्धित आँकड़े भी लगभग इन्हीं स्थितियों का वर्णन करते हैं।

अँग्रेजी शिक्षा अधिनियम, 1835 के अनुसार अँग्रेजों के आने से पहले भारत में शिक्षा का कितना व्यापक प्रसार था, इसकी एक झलक **''हाउस ऑफ कॉमन्स''** में लार्ड वैविंगटन मैकाले की उस स्वीकारोक्ति से स्पष्ट हो जाती है जब उसने कहा कि इंग्लैण्ड के दो सौ विद्यालयों के विपरीत भारत में लगभग 2,57,000 पाठशालाएँ अर्थात् प्रत्येक गाँव में एक शिक्षाकेन्द्र है।

लोक शिक्षण-

इसके साथ ही तीर्थाटन, पर्व-मेले, कथा-प्रवचन इत्यादि समारोहों तथा विद्वत् गोष्ठियों के माध्यम भी एक प्रकार से लोक शिक्षण के सशक्त व प्रभावी संसाधन रहे।

समावर्तन-

सत्यं वद, धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः। सत्यान्न प्रमदितव्यम्। धर्मान्न प्रमदितव्यम्। कुशलान्न प्रमदितव्यम्। भूत्यै न प्रमदितव्यम्। स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्। एष आदेशः। एषः उपदेशः। एषः वेदोपनिषत्। एतदनुशासनम्।[25]

पुरुषार्थ- जीवन, पुण्य, भगवान्। प्रमाद- मृत्यु, पाप, शैतान।- (श्रद्धेय स्वामी रामदेव जी महाराज)

समावर्तन संस्कार में आचार्य की तरफ से सत्य व धर्म का पालन करने में स्वाध्याय, पुरुषार्थ करने में प्रमाद न करने का आदेश व उपदेश दिया जा रहा है। वेद में कहा है **प्रमादं वै मृत्युमहं ब्रवीमि।[26] प्रमादो मृत्योः पदम्।[27]** योग के नौ अन्तरायों में भी प्रमाद का नाम आया है। श्रद्धेय स्वामी जी महाराज भी प्रमाद को पाप, शैतान व मृत्यु कहते हैं क्योंकि यह प्रमाद ही मात्र एक ऐसा दोष है जो व्यक्ति को कोई बड़ा लक्ष्य हासिल नहीं करने देता है। प्रमाद भी दो प्रकार का होता है, एक है सक्रिय प्रमाद और दूसरा है निष्क्रिय प्रमाद। सक्रिय प्रमाद से अभिप्राय है जो कर्म जिस इन्द्रिय से करना चाहिये उसे न करना और जो कर्म जिस इन्द्रिय से नहीं करना चाहिये उसे प्रमादवश कर डालना। प्राचीन काल में भी आचार्य इस मानवीय कमजोरी

को जानते थे इसलिए जाते-जाते भी उसे इस दोष के प्रति अत्यधिक सजग रहने का उपदेश देते थे।

प्राचीन भारत का शिष्य, गुरु का न केवल विद्यार्थी होता था, अपितु वह गुरु के परिवार का एक सदस्य भी होता था। प्रातः काल से निद्रा पर्यन्त वह गुरु के पर्यवेक्षण में उनके द्वारा बताये गए नियमों के पालन करने तथा अध्ययन में निरत रहता था। इस अनोखे स्नेहात्मक संबंधों के कारण शिष्यों की व्यक्तिगत अभिरुचियों, विशेषताओं तथा आचरण-व्यवहार की पूर्ण परख गुरु द्वारा सतत, सहज और स्वाभाविक रूप से होती रहती थी। शिष्य भी गुरु द्वारा दिये गये उपदेशों का ध्यानपूर्वक श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन कर विद्या में पारंगत होता रहता था **चतुर्भिश्च प्रकारैर्विद्योपयुत्तफा भवति-आगमकालेन, स्वाध्यायकालेन, प्रवचनकालेन, व्यवहारकालेनेति।[28]** इस सतत मूल्यांकन के द्वारा गुरु अपने शिष्यों को बढ़ाने का तथा उसकी योग्यता को आँकने का प्रयास करते थे।

इस प्रकार ब्रह्मचर्य (शिक्षा-सत्र) की समाप्ति के उपरान्त उत्तीर्ण छात्रा को आचार्य स्वयं माला व हंस के चिर्विले दुकूल (रेशमी दुपट्टा) ओढ़ाकर उसके स्नातक होने की पुष्टि तथा घर लौटने की अनुमति प्रदान करते थे। स्नातकों का इस प्रकार गुरुकुल से लौटने की क्रिया को ही समावर्तन के नाम से जाना जाता था। इसके उपरान्त गुरु अथवा कुलपति उन्हें आदर्शजनित भावी जीवनयापन के लिए समावर्तन उपदेश देते थे।

9. प्राचीन भारत के शिक्षा केन्द्र एवं विश्वविद्यालय –

भारत में अनादि काल से ही गुरुकुलों की एक समृद्ध परंपरा रही। वर्णक्रम के लिए प्रसिद्ध माहेश्वर सूत्र के प्रणेता गुरुओं के गुरु महादेव से लेकर भृगु, कश्यप, अत्रि, मरीचि, अंगिरा, पुलस्त्य, दृतु, पुलह, गौतम, वशिष्ठ, विश्वामित्र, अगस्त, बादरायण आदि के संदर्भ वैदिक ग्रंथों में उपलब्ध हैं। रामायण के अनुसार **ब्रह्मर्षि वशिष्ठ मुनि** का आश्रम सरयू नदी के तट पर अवध् प्रान्त में, **राजर्षि विश्वामित्र** का आश्रम कौशिकी नदी के तट पर मगध प्रान्त में, **महर्षि वाल्मीकि** का आश्रम तमसा व गंगा नदियों के निकटवर्ती तट पर, **सांख्याचार्य कपिलमुनि** का आश्रम उत्कल प्रान्त में, **ऋषि वामदेव** का आश्रम विन्ध्य पर्वत की मेखलाओं में नर्मदा नदी के उद्गम स्थान पर, **ऋषि भारद्वाज** का आश्रम प्रयाग में तथा **महर्षि अगस्त** का आश्रम दण्डकारण्य में रहा था। इसी प्रकार महाभारत काल में **महर्षि संदीपनि** का आश्रम उज्जैन में, **महर्षि कण्व** का आश्रम मालिनी नदी के तट पर, **महर्षि वेदव्यास** का आश्रम हिमालय पर्वत पर तथा **महर्षि शौनक** का आश्रम नैमिषारण्य में रहा था। ये सभी आश्रम अपने काल में श्रेष्ठ विद्या केंन्द्रों के रूप में प्रतिष्ठित थे और उपर्युक्त सभी ऋषिगण अपने आश्रमों के कुलपति कहे जाते थे। स्मृतियों के अनुसार कुलपति का यह उदबोधन उन आचार्यों के लिए प्रयुक्त होता था जो कम से कम दस हजार विद्यार्थियों के अध्यापन व पोषणादि की व्यवस्था करता था। आज नई शिक्षा नीति में तो मात्रा 3 हजार विद्यार्थी रखने की बात हो रही है।

समय के प्रवाह में गुरुकुल, आचार्यकुल या आश्रम के रूप में प्रसिद्ध विद्या के विशिष्ट केन्द्र अपने बृहद् स्वरूप के कारण विश्वविद्यालय के रूप में परिणित हो गए। जिनमें अत्यन्त प्रसिद्ध गान्धर प्रान्त में स्थित **तक्षशिला विश्वविद्यालय** जो महाभारत काल से ही प्रसिद्ध रहा। जहाँ **पर ऋषि धैम्य के शिष्य उपमन्यु, आरूणि आदि ने ज्ञानार्जन किया था।** इस विश्वविद्यालय के प्रमुख और प्रसिद्ध आचार्यों में महर्षि पाणिनि, महर्षि चरक, आचार्य चाणक्य व आचार्य जीवक का नाम प्रसिद्ध है। इस विश्वविद्यालय में छात्रों की संख्या 10500 और आचार्यों की संख्या 2000 के लगभग थी। भारतवर्ष में तक्षशिला के अतिरिक्त **वाराणसी (काशी)** भी ज्ञानार्जन का महत्वपूर्ण केन्द्र रहा है और विदेहराज राजर्षि जनक के समय से ही मिथिला का भी महत्वपूर्ण स्थान रहा है, यहां के आचार्यों की श्रृंखला में **जगद्धर विद्यापति, गणेश उपाध्याय, पक्षधर मिश्र, वासुदेव मिश्र, महेश ठाकुर, शघड्ढर मिश्र व वाचस्पति मिश्र आदि विद्वान् रहे हैं।** यह स्थान **''शलाका परीक्षा''** के लिए प्रसिद्ध था। झेलम तथा किशन गंगा नदियों के संगम पर बसा हुआ मुजफ्फराबाद एक नगर है। जहाँ पर आज भी **शारदा विश्वविद्यालय** के अवशेष प्राप्त होते हैं। कनिष्क के राज्य में यह सम्पूर्ण मध्य एशिया का बृहद् सर्वश्रेष्ठ ज्ञान का केंद्र था। कल्हण विरचित 'राजतरंगिणी' में इसका वर्णन किया गया है

कि सम्राट् ललितादित्य के समय इस विश्वविद्यालय में चौदह विषयों से अधिक की शिक्षा दी जाती थी। इसी विश्वविद्यालय में ही देवनागरी से अलग **शारदा लिपि** का प्रार्दुभाव हुआ था। इन सभी के अतिरिक्त **सौराष्ट्र** के काठियावाड़ में स्थित वल्लभी विश्वविद्यालय, मगध का विक्रमशिला विश्वविद्यालय, **राजगीर** का **नालन्दा विश्वविद्यालय**, **ओड़िसा प्रान्त के ओदन्तपुरी**, **जगद्दला, उदयगिरि, रत्नागिरि, ललितागिरि** तथा **कलिंग का पुष्पगिरि**, **बंगाल का नवद्वीप, सोमपुरा व विक्रमपुर विश्वविद्यालय,** एवं आदि शंकराचार्य द्वारा स्थापित किए गए **कांची कामकोटिपीठ, ज्योतिष्पीठ, शारदापीठ, गोवर्धनपीठ, श्रृंगेरीपीठ** लब्ध प्रतिष्ठित शिक्षा केन्द्रों के रूप में विख्यात रहे थे। नवद्वीप विश्वविद्यालय से निकले विद्वानों में हलायुध, धेयी, उमापति तथा **गीत-गोविंदय्** के सुविख्यात रचनाकार जयदेव प्रमुख रहे। **दक्षिण भारत** के उच्च शिक्षा केन्द्रों के रूप में **धरा, कांची, एन्नरियम, वेलग्राम, सालोतगी, तिरुमुक्कुरल, मलकापुरम्, तिरुवेरियूर, नगइ, भुजबलेश्वर, बीजापुर, मनगोली, अग्रहार, नागार्जुनकोंडा व मणिखेत** आदि प्रमुख रहे।

10. गुरु शिष्य का विराट् सम्बन्ध-

प्राचीन काल से भारत का अस्तित्व एक विराट् गुरुकुल के रूप में ही विकसित हुआ। एक ऐसा गुरुकुल जहाँ गुरु व शिष्य दोनों अनन्य भाव से ज्ञान की साधना में निमग्न रहते हैं। भारत को समझना है तो गुरु-तत्त्व को समझना होगा और यदि गुरु-तत्त्व को समझना है तो फिर भारत को समझना पड़ेगा। प्राचीन शिक्षा पद्धति में शिक्षा केन्द्रों की भव्यता, आलीशान भवनों व संसाधनों की अपेक्षा आचार्यों की गुणवत्ता व छात्रों के प्रति उनकी समर्पण निष के मानदण्ड के आधार पर ही परखी जाती रही। वस्तुतः **शिक्षालयों की अपेक्षा शिक्षक ही वह चाक है जिस पर मानवता का वास्तविक स्वरूप आकार लेता है।**

यही कारण रहा कि इस देश में गुरु को जितना सम्मान मिला, उनके प्रति जितनी प्रबल श्रद्धा रही उसका सहस्त्रांश भी विश्व में अन्यत्र कहीं देखने व सुनने को नहीं मिलता है। **विश्व के अन्य हिस्सों में कुशल विशेषज्ञ मिल सकते हैं, शिक्षण तकनीकी में पारंगत पेशेवर अध्यापक भी मिल सकते हैं किन्तु अपने आचरण मात्र से ही छात्रों के अन्तःकरण में ज्ञान के उदात्त गुणों की लौ को प्रज्वलित कर देने वाले आचार्य केवल भारतवर्ष में ही उपलब्ध हो सकते हैं।**

आचार्य आचारं ग्राहयति आचिनोत्यर्थान् आचिनोति बुद्धिमिति वा।[29] गुरु के इसी दिव्य स्वभाव के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए भारतीय मानस ने उन्हें त्रिदेवों से भी उच्च स्थान, परमब्रह्म, के समकक्ष मानकर उनकी अभ्यर्चना की।

भारतीय मान्यताओं में अध्यापन किसी व्यवस्था या प्रणाली द्वारा नियोजित दायित्व को कुशलतापूर्वक संपादित करने या फिर पाठ्यपुस्तकों में वर्णित संदर्भों व उससे सम्बन्धित सूचनाओं को संप्रेषित करने की दक्षता मात्रा तक सीमित नहीं रहता है। अपितु **अध्यापन एक ऐसी दुरूह जीवनवृत्ति है जो आत्मोत्सर्ग द्वारा प्रज्ञावान् पीढ़ी के सृजन में** निरन्तर प्रयत्नशील बने रहने की एक सतत साधना है। **यह एक ऐसा दायित्व है जिसके निर्वहन में व्यक्तिगत अभिलाषाएँ व आकांक्षाएँ प्रायः गौण हो जाया करती हैं। भारतीय मनीषियों की यह मान्यता रही कि जब तक व्यक्ति के अंदर अध्यापन करने की ऐसी ज्वलन्त उत्कण्ठा न हो, तब तक मात्र जीविकोपार्जन के क्षुद्र लक्ष्य को हासिल करने के लिए उसे अध्यापक नहीं बनना चाहिए। वास्तविकता भी यही है कि सच्चा अध्यापक अन्तर्मन से समृद्ध होता है**, अतः उसे बाह्य प्रलोभन प्रभावित नहीं करते हैं। व्यक्ति से परिवार, परिवार से लोक तथा लोक से राष्ट्र एवं वैश्विक परिवेश का निर्माण शिक्षक के इसी दायित्वपूर्ण बोध पर ही निर्भर होता है। इसीलिए वेद में कहा भी गया है कि- **वयं राष्ट्रेजागृयाम पुरोहिताः।[30]**

भारतीय ज्ञान परम्परा में गुरु या आचार्य का पद बहुत ही यशस्वी एवं प्रतिष्ठित होता है। यह पद त्याग, तपस्या, अखण्ड-प्रचण्ड-पुरुषार्थ तथा सत्याचरण से ही प्राप्त हो सकता है। यद्यपि माता-पिता अपने संतान को जन्म देकर उसका पालन-पोषण करके अपना कर्त्तव्य निभाते हैं। तथापि गुरु उस संतान को मानव से महामानव, नर से नारायण बनाने का महान पुरुषार्थ करते हैं तथा शिष्य के रूप में अंगीकार कर आत्मदान से अमरत्व प्रदान करते हैं। उदाहरणार्थ- इस परम्परा के

निर्वहन में जो सबसे प्रसिद्ध उदाहरण है उनमें प्राचीन- अर्जुन और कृष्ण तथा आधुनिक काल के तीन संदर्भ हमारे सामने उपस्थित होते हैं- प्रथम संदर्भ आचार्य चाणक्य व चन्द्र का है जिसके संपर्क में आने के उपरान्त दासी मुरा का पुत्र सम्राट् चन्द्रगुप्त के रूप में इतिहास में अमर हुआ, वहीं द्वितीय उदाहरण दण्डी स्वामी गुरु विरजानन्द का है जिन्होंने ऋषि परम्परा के ज्ञान से अर्थात् आर्ष शिक्षा के प्रभाव से उनका विराट व्यक्तित्व निखार कर सार्वकालिक आर्ष चिन्तक, महान समाज सुधारक महर्षि दयानन्द के रूप में संसार के सामने उपस्थित कर दिया। तृतीय उदाहरण रामकृष्ण परमहंस के सम्पर्क में आये हुए विश्वनाथ दत्त के यशस्वी पुत्र नरेंद्र का है जो गुरु की सन्निधि में आकर नरेंन्द्र से स्वामी विवेकानन्द बनकर विश्वपटल पर प्रसिद्ध हुए।

11. क्या गुरुकुलीय शिक्षा व्यवस्था का नई शिक्षा नीति से कोई सम्बन्ध है?

नई शिक्षा नीति एवं प्राचीन गुरुकुलीय शिक्षा पद्धति में परस्पर अर्न्तसम्बंध- प्राचीन गुरुकुलीय शिक्षा पद्धति में अत्यंत महनीय, जीवनोपयोगी, आत्म-कल्याण, विश्व-कल्याण, सूक्ष्म व स्थूल जगत के ज्ञान-विज्ञान से परिपूर्ण थी। जिस शिक्षा नीति की चर्चा आधुनिक शिक्षाशास्त्री करते रहे हैं और **वर्तमान में जो नई शिक्षा नीति का लक्ष्य है। यथा- समग्रता से परिपूर्ण शिक्षा होनी चाहिए, शिक्षा जिज्ञासा केन्द्रित होनी चाहिए, शिष्य का सतत् मूल्यांकन होता रहे ऐसी शिक्षा होनी चाहिए। संस्कृति की जड़ों से युक्त शिक्षा होनी चाहिए, अनुभूति गम्य शिक्षा होनी चाहिए, क्रिया आधारित शिक्षा होनी चाहिए। छात्र के सामर्थ्य के अनुसार उसका पाठ्यक्रम होना चाहिए आदि।** इसके प्रमाण हमारे वेदों, स्मृतियों, उपनिषदों, दर्शनों एवं रामायण, महाभारत आदि ग्रन्थों में पर्याप्त रूप से मिलते हैं। जिसे प्राचीन काल के गुरु-शिष्य ज्ञान परम्परा में ऋषियों के द्वारा आत्मसात किया गया था। गुरुकुलीय ज्ञान विशेषकर उपनिषदों में वर्णित शिक्षा गुरु-शिष्य संवाद, जिज्ञासा, क्रियात्मक, अनुभूति युक्त एवं सांस्कृतिक मूल्यों से ओत-प्रोत होती थी। जिसे केनोपनिषद्, कठोपनिषद्, प्रश्नोपनिषद्, तैतिरीयोपनिषद्, छान्दग्योपनिषद् आदि के स्वाध्याय से हम समझ सकते हैं। पिछले लगभग 200 वर्षो के बाद हमें प्रसन्नता है कि वर्तमान नई शिक्षा नीति में कुछ बिन्दु हुबहु गुरुकुलीय शिक्षा पद्धति से मेल खाते हैं। उदाहरण के लिये हम दोनों शिक्षा नीतियों का तुलनात्मक अध्ययन यहाँ बिन्दुवार करेंगे।

1. Growth of physical, vital, mental, intellectual and spiritual forces.

(पाँच कोशों या आयामों को पूर्ण विकसित करने वाली शिक्षा)

जैसा कि हम गुरुकुलीय शिक्षा पद्धति में पंचकोश अन्नमयकोश, प्राणमयकोश, मनोमयकोश, विज्ञानमयकोश एवं आनन्दमयकोश के विकास के माध्यम से बालक के आन्तरिक विकास की चर्चा कर चुके हैं, बिल्कुल वही चर्चा वर्तमान शिक्षा नीति में शारीरिक, प्राणिक, मानसिक, बौद्धिक और आत्मिक इन 5 शक्तियों को वर्तमान युग के शिक्षा शास्त्रियों ने विकसित करने पर बल दिया है। महर्षि श्री अरविन्द, स्वामी विवेकानन्द जी ने भी इसी प्रकार की शिक्षानीति की चर्चा अपने ग्रन्थों में की है।

ओम् अग्नये समिधमाहार्ष बृहते जातवेदसे। यथा त्वमग्ने समिधा समिध्यसऽएवमहर्मायुषा मेधया वर्चसा प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन समिन्धे जीवपुत्रो ममाचार्यो मेधाव्यहमसान्यनिराकरिष्णुर्यशस्वी तेजस्वी ब्रह्मवर्चस्यन्नादो भूयासँ स्वाहा।।[31]

अर्थात् हे ब्रहत स्वरूप वाले अग्निदेव/आचार्यदेव आचार्यप्रवर। जिस प्रकार आप इस अग्नि में समिधाएं अर्पित कर रहे हैं और इस अग्नि को जिन्दा (प्रज्ज्वलित) रखे हुए हैं, उसी प्रकार मैं भी आयु से अर्थात् प्राण से, मेधया-बुद्धि से, वर्चसा= विशेष ज्ञान से प्रजया पशुभि= इन्द्रियों से तथा ब्रह्मवर्चसेन=bliss आनन्द से सदा प्रकाशित रहूँ। मेरा आचार्य सदा जीवपुत्र बना रहे। मैं यशस्वी, तेजस्वी, आनन्दी तथा त्यागभाव से संसार का उपयोग करने वाला बनूं।

2. Student centric or Teacher centric education?

(शिक्षा छात्रा केन्द्रित अथवा गुरु केन्द्रित?)

पूरे विश्व में आज इस बिन्दु पर चर्चा होती है कि शिक्षा छात्रा केन्द्रित होनी चाहिए अथवा गुरु केन्द्रित? कुछ लोगों का माननता है शिक्षा छात्रा केन्द्रित होनी चाहिए तथा कुछ लोगों का मानना है कि शिक्षा गुरु केन्द्रित होनी चाहिए, लेकिन गुरुकुलीय शिक्षा पद्धति इन दोनों से ऊपर उभयकेन्द्रित के आदर्श को मानते हुए गुरु शिष्य दोनों का अलग अस्तित्व स्वीकार नहीं करती, अपितु दोनों के साथ-साथ विकास की बात करती है। जैसे कि गर्भस्थ शिशु और माँ का अस्तित्व अलग नहीं होता उसी प्रकार गुरु और शिष्य का अस्तित्व भी साथ-साथ ही विकसित होता है।

ऊँ सह नाववतु सह नौ भुनक्तु सहः वीर्यं करवावहै। तेजस्वि नावधितमस्तु मा विद्विषावहै।।[32]

आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः।

तं रात्रिस्तिड्ड उदरे बिभर्ति तं जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति देवाः।।[33]

सह नौ यशः सह नौ ब्रह्मवर्चसम्।।[34] अर्थात्- हे प्रभो! हम दोनों गुरु शिष्यों का संसार में, वेद और ज्ञान-विज्ञान आदि उत्तम शिक्षा द्वारा यश फैले। हम दोनों का पढ़ना-पढ़ाना तेजस्वी हो।

3. Curiosity based Education.

(जिज्ञासा आधारित शिक्षा)

आधुनिक शिक्षाविदों का मानना है कि शिक्षा जिज्ञासा आधरित होनी चाहिए। ऐसा ना हो कि हम बहुत ऊँचे उपदेश देते जायें और छात्र को कुछ समझ में ना आये। परीक्षा के समय वह कुछ रटकर पास हो जायें वास्तव में उसे पढ़ने में आनन्द तब आयेगा जब वह स्वयं कुछ जिज्ञासा करेगा। इस बात की वैज्ञानिकता को हजारों वर्ष पहले हमारे ऋषियों ने जाना था इसलिए अथर्ववेद के ब्रह्मचर्य सूक्त का प्रथम मन्त्र ईक्षण शब्द से शुरू होता है जिसका अर्थ होता है- जिज्ञासा।

ब्रह्मचारीष्णंश्चरित रोदसी उभे तस्मिन्देवाः संमनसो भवन्ति।[35] (अथर्ववेद 11.5.1)

ब्रह्मचारी दोनों लोगों के प्रत्येक पदार्थ में उस ब्रह्म को खोजता हुआ विचरण करता है। उसके इस सरल जिज्ञासु मन के साथ दिव्य शक्तियों का सम्पर्क हो जाता है।

इसी प्रकार गुरु-शिष्य का जिज्ञासा परक शिक्षा संवाद केनोपनिषद्, कठोपनिषद्, प्रश्नोपनिषद्, तैतिरीयोपनिषद्, छान्दग्योपनिषद् एवं श्वेताश्वतरोपनिषद् में अत्यन्त प्रसिद्ध है।

केनेषितं पतति प्रेषितं मनः केन प्राणः प्रथमः प्रेति युक्तफः। केनेषितां वाचमिमां वदन्ति, चक्षुः श्रोत्रां क उ देवो युनक्तिफ।[36]

प्राचीन शिक्षा परम्परा में शिष्य गुरु से निःसंकोच उसके में मन में जो जिज्ञासा आती थी वह प्रश्न करता था जिसका समाधान गुरु देते थे। जब तक कि वह पूर्ण रूप से संतुष्ट न हो जाए। कठोपनिषद् में वर्णित जिज्ञासु शिष्य नचिकेता और ब्रह्मनिष्ठ श्रेष्ठज्ञानी- **वक्तफा चास्य त्वादृगन्यो न लभ्यो।[37]** यमाचार्य की कथा अत्यन्त प्रसिद्ध है। जिसमें यमाचार्य ने प्रिय शिष्य नचिकेता की प्रशंसा की है।

स त्व प्रियान् प्रिय रूपांश्च कामानभिध्यायन्नचिकेतोऽत्यस्राक्षीः।[38]

सम्पूर्ण कठोपनिषद् में यमाचार्य ने शिष्य नचिकेता की जिज्ञासा को केन्द्र में रख करके उसको संतुष्ट किया। इसी प्रकार गुरु-शिष्य के संवादात्मक जिज्ञासापरक शिक्षा का अत्यन्त महत्त्व है।

महर्षि दयानन्द जी के जीवन चरित में भी गुरु-शिष्य संवाद का रोचक प्रसंग आया है जिसमें महर्षि दयानन्द जी ने अपने गुरु विरजानन्द जी से अनेक जिज्ञासाएं की है जिनका उत्तर दण्डी स्वामी जी ने दिया है- कभी-कभी गुरु-शिष्य में शास्त्रार्थ भी छिड़ जाता था। विरजानन्द महान् तार्किक थे, परन्तु दयानन्द भी कोई साधरण वाक्पटु न थे। गुरुजी कई बार उन्हें **'कालजिवि'** और **'कुलक्कर'** की उपाधियाँ दे देते थे।

प्रश्नोपनिषद् में गुरु-शिष्य संवाद का बहुत ही रोचक प्रसंग आता है जिसमें महर्षि पिप्पलाद के पास ये छः ब्रह्म जिज्ञासु आते हैं-

ओऽम् सुकेशा च भारद्वाजः, शैव्यश्च सत्यकामः, सौर्यायणी च गार्ग्यः, कौशल्यश्चाश्वलायनो, भार्गवो वैदर्भिः, कबन्धी कात्यायनस्ते हैते ब्रह्म परा ब्रह्म निष्ठाः परं ब्रह्मान्वेषमाणा एष ह वै तत्सर्वं वक्ष्यतीति, ते ह समित्पाणयो भगवन्तं पिप्पलादमुपसन्नाः। [39]

4. Mapping of knowledge status of the student.

(विद्यार्थी की सामर्थ्यानुसार अध्यापन)

आधुनिक शिक्षा का बहुत महत्वपूर्ण बिन्दु है कि शिक्षा छात्रा के सामर्थ्य अनुसार दी जानी चाहिए। **यथाशात्तिफ वाचयीत।।[40]**

अर्थात्- ब्रह्मचारी की शक्ति के अनुसार पढ़ावे।।

धर्माथौ यत्रा न स्यातां शुश्रुषा वाऽपि तद्विध। विद्यया सह मर्तव्यं न चैनामूषरे वपेत्।।[41]

अर्थात्- गुरु को चाहिए कि वह योग्य, सुपात्र शिष्य को ही विद्या दान करे। किसी अयोग्य, कुपात्र शिष्य को न पढावे। क्योंकि न तो इससे धर्म और न ही अर्थ की प्राप्ति होती है। यदि ऐसा न हो तो मृत्यु का वरण कर ले। पर अयोग्य शिष्य को विद्या न प्रदान करे। कारण इस प्रकार अयोग्य पात्र को दी गई विद्या ऊसर खेत में बीज बोने से कम नहीं है।

इमां धियं शिक्षमाणस्य देव क्रतुं दक्षं वरुण सं शिशाधि।

ययाति विश्वा दुरिता तरेम सुतर्माणमधि नावं रुहेम।।[42]

इस मन्त्रा में प्रार्थना की गई है कि हे सतत् ईक्षण करने वाले आचार्य! आप इस विद्यार्थी-समूह की बुद्धि कर्म-शक्ति और निपुणता को सम्पूर्ण और अनुशासनयुक्त बनाइये। जिससे हम लोग ज्ञान तथा अनुशासन रूपी नौका पर चढ़कर अज्ञान आदि दुर्गुणों तथा दुःखों को पार कर लें।

अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः सखायो मनोजवेष्वसमा बभूवुः।

आदघ्नास उपकक्षास उ त्वे "दा इव स्नात्वा उ त्वे ददृस्रे।।[43]

इसके अतिरिक्त वेदों में आचार्य से **संयमी**, **वाचस्पति** (वाणी का स्वामी), **वसुपति** (गुणधर्म को जानने वाला), **भूतकृत्** (चरित्रा निर्माता), **ज्ञाननिधि** (विषयों पर अच्छी पकड़), **मनुर्भव** (मननशील व विचारक), **वाक् तत्त्ववित्** (भाषा विज्ञानी), दूरदर्शी एवं प्रसन्नचित्त आदि गुणों से सम्पन्न होने की भी अपेक्षा की गयी है।

अतः अध्यापन से पूर्व आचार्य के लिए यह आवश्यक है कि वह छात्रों की प्रवृत्तियों का, उसके मानसिक झुकाव का, उसके स्वभाव व क्षमताओं का, उसकी पृष्ठभूमि तथा उसके पैतृक व आनुवांशिक प्रभावों का बड़ी सूक्ष्मता एवम् सकारात्मक दृष्टिकोण से अध्ययन करते हुए उसे विषयों में प्रवेश करने योग्य बनाने का यत्न करें। आचार्यों में इस **प्रतिभा** सम्पन्नता के साथ अपने दायित्वों के प्रति निष्काम **प्रतिबद्धता** और फिर शिष्यों में उसका कुशलतापूर्वक **प्रक्षेपण** की सिद्धता तथा परिणाम द्वारा इसका स्वतः मूल्यांकन करना भी अपेक्षित माना गया है। तैत्तिरीयोपनिषद् में आचार्य-शिष्य संबंधों का सूक्ष्म चित्रण करते हुए आचार्य पूर्वरूप व शिष्य को उसका उत्तररूप (अनुसर्ता) कहा गया है, विद्या सन्धि है जो दोनों का सम्बन्ध जोड़ती है और प्रवचन इनका संयोजक है- **आचार्यः पूर्वरूपम् अन्तेवास्युत्तररूपम्। विद्या सन्धिः। प्रवचनम् सन्धनम्। इत्यधि विद्यम्।[44]**

इसके साथ ही शिष्यों से भी यह अपेक्षा की गयी है कि वह अपने सेवा व शुश्रूषा के द्वारा गुरु के भीतर विद्यमान विद्या को उसी प्रकार से प्राप्त कर ले, जिस प्रकार खनित्र या फावड़े से भूमि खोदकर मनुष्य जल निकाल लेता है **यथा खनन् खनित्रेण नरो वार्यधिगच्छति। । तथा गुरुगतां विद्यां शुश्रूषुरधिगच्छति।[45]**

इस प्रकार आचार्य की अनुकम्पा से प्राप्त ज्ञान को छात्रा अध्ययन (अधीति), अनुशीलन (बोध), व्यावहारिक प्रयोग (आचरण) के माध्यम से ग्रहण करते हुए लोक में इसको उचित

रूप से सम्प्रेषित (प्रचारण) करने का प्रयत्न करें ताकि उनके द्वारा अर्जित ज्ञान का लाभ जन समुदाय भी उठा सके।

5. Inclusive education.

(सर्वसमावेशी शिक्षा)

नई शिक्षा नीति इस बात पर बल देती है कि शिक्षा मनुष्य मात्रा के लिए समान रूप से अनिवार्य है, अर्थात् चारों वर्णों एवं महिला-पुरुष सभी समान रूप से शिक्षा के अधिकारी हैं उपनिषदों में महाराजा ज्ञानश्रुति, जनक एवं अश्वपति, क्षत्रिय वर्ण से सम्बन्ध रखते हैं जबकि रैक्व, सत्यकाम, जाबाल, महिदास एवं व्यास आदि ऋषि उच्च वर्णों से सम्बन्ध नहीं रखते हैं, इसी प्रकार छान्दोग्योपनिषद् में गार्गी और याज्ञवल्क्य का संवाद नारी शिक्षा का प्रखर प्रमाण है। अथर्ववेद में कहा है- **ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्।[46]** अर्थात् अपने ब्रह्मचर्य आश्रम की परिसमाप्ति पर अर्थात् शिक्षा-दीक्षा पूर्ण होने पर कन्या अपने युवा पति को प्राप्त करे। इससे ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में शिक्षा का अधिकार समान रूप से मनुष्यमात्र को प्राप्त था।

पंचविंशे ततो वर्षे पुमान्नारी तु षोडशे। समत्वागतवीर्यौ तौ जानीयात् कुशलो भिषक्।।[47]

यहाँ पर नारी को पुरुष से भी अधिक शक्तिशाली व बुद्धिमती बताया गया है क्योंकि पुरुष के पास 25 वर्ष में जो शक्तियाँ संचित होती हैं, नारी 16 वर्ष मात्र में उनसे सम्पन्न हो जाती है।

यथेमां वाचघङ्कल्याणीमावदानि जनेभ्यः। ब्रह्म राजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय च।[48]

6. Holistic education, ultimate goal of education.

(शिक्षा में समग्रता)

आधुनिक शिक्षाशास्त्री मानते हैं कि शिक्षा खण्ड-खण्ड नहीं समग्रता से युक्त होनी चाहिए। यद्यपि एक-एक खण्ड अथवा विषय भी अपने-आप में पूर्ण ही होता है परन्तु वह समग्रता से सर्वदा अभिन्न ही है। छान्दोग्योपनिषद् में नारद-सनत्कुमार संवाद के 26 खण्डों में बहुत ही सुन्दर ढंग से इस बात को प्रस्तुत किया गया है, यहाँ पर शब्दवित् से शिक्षा का प्रारम्भ करके आत्मवित् अथवा ब्रह्मवित् तक शिक्षा की पूर्णता को दर्शाया गया है, इसी प्रकार छान्दोग्योपनिषद् के षष्ठ प्रपाठक के 1 से 16 खण्ड तक आरुणि उद्दालक अपने पुत्र श्वेतकेतु को शिक्षा की इसी समग्रता का उपदेश करते हैं। हमारे ऋषियों का मानना था कि शिक्षित व्यक्ति के जीवन में किसी भी प्रकार की न्यूनता नहीं होनी चाहिए। उदाहरणार्थ- संस्कारविधिः के वेदारम्भ संस्कार में गुरु कहते हैं- **'हे बालक! त्वमीश्वरकृपया विद्वान् शरीरात्मबलयुक्तः कुशली वीर्यवान् अरोगः सर्वा विद्या अधीत्याऽस्मान् दिदृक्षुः सन्नागम्याः।।[49]**

7. Observation & Project based education.

(प्रेक्षण एवं परियोजना आधारित शिक्षा)

आधुनिक शिक्षाविदों का मानना है कि बालक की शिक्षा, प्रेक्षण तथा परियोजना बुद्धि से युक्त होनी चाहिये। बचपन से ही छोटे-छोटे प्रोजैक्ट कुशलता पूर्वक पूरे कर लेने पर पूरे जीवन के विराट् प्रोजैक्ट को मनुष्य बड़े आनन्द के साथ पूरा कर सकता है।

प्राचीनकाल में यह बात छान्दोग्योपनिषद् में हमें देखने को मिलती है। सत्यकाम, जाबाल को उनके गुरुजी एक परियोजना देकर जंगल में भेजते हैं और कहते हैं कि ये 400 गायें जब 1000 हो जायें तब वापस गुरुकुल में लौटना तभी हम आपको शिक्षित करेंगे। इस परियोजना को पूर्ण करने के लिए सत्यकाम जाबाल पृथ्वी से, हवाओं से, दिशाओं से, सूर्य से, गायों से एवं सम्पूर्ण प्रकृति से प्रेक्षण (Observation) करते हुए ब्रह्मज्ञान से युक्त होकर गुरु के पास वापस लौटते हैं।

तमुपनीय कृशानामबलानां चतुःशता गा निराकृत्योवाचेमाः सोम्यानुसंव्रजेति। ता अभिप्रस्थापयन्नुवाच नासहस्रमावर्तयेति। स ह वर्षगणं प्रोवास। ता यदा सहस्रꣳ संपेदुः।।[50]

यह एक गुरुभक्ति, विद्याप्राप्ति की जिज्ञासा हेतु प्रयोगात्मक परीक्षा रूप था। 400 गायें जब तक सहस्र हो गई तब कई वर्ष के पश्चात् उनको लेकर आश्रम में आया। तब तक सत्यकाम

जाबाल को प्रकृति के अलग-अलग घटकों व श्रेष्ठ विद्वानों की संगति से अत्यंत गुह्य ज्ञान प्राप्त हो गया था।

ब्रह्मविदिव वै सोम्य भासि, को नु त्वाऽनुशशासेत्यन्ये मनुष्येभ्य इति ह प्रतिजज्ञे, भगवाꣳस्त्वेव मे कामं ब्रुयात्।[51] (छान्द.4.9.2)

सत्यकाम को देखकर गुरु ने कहा हे सोम्य ! तुम तो मुझे ऐसे प्रतीत होते हो, जैसे ब्रह्मज्ञानी हो गये हो। आप को किसने ब्रह्मज्ञान का उपदेश किया है? सत्यकाम कहते हैं हे गुरुवर! मुझे साधारण मनुष्यों से भिन्न विशेष वृषभ, अग्नि आदि प्रकृति के विभिन्न घटकों ने कुछ सिखाया है, फिर भी भगवन् मैं आप का शिष्य हूं आप मेरी कामना को पूर्ण करें अर्थात् आप मुझे उपदेश करें।

8. Sustainable & enjoyable education (with life skill)

(संपोषकीय, जीवन की कुशलता एवं आनन्द से युक्त शिक्षा)

आधुनिक शिक्षाशास्त्रियों ने यह भी महसूस किया है कि शिक्षा, जीवन की मौलिक कुशलताओं से युक्त होनी चाहिए जैसे भ्रातृत्व, सह-अस्तित्व, अहिंसक, स्वतन्त्रता से युक्त, आनंद से युक्त सामुहिक प्रज्ञा से युक्त इत्यादि। प्राचीनकाल में गुरुकुल में गुरु के सान्निध्य में रहते हुए अनेक ब्रह्मचारियों के साथ बालक रहता था। उनमें सब एक-दूसरे के सुख-दुःख, सेवा, सुश्रुषा आदि का परस्पर ध्यान रखते थे। जो पाठ गुरु पढ़ाते थे, सब उनको एक साथ मिलकर दोहराते थे, इससे सामुहिक प्रज्ञा, भ्रातृत्व, सहअस्तित्व आदि गुणों का सहज ही विकास होता था।

तं
शिष्यगुरुसब्रह्मचारिविशिष्टश्रेयोर्थिभिरनसूयुभिरभ्युपेयात्।
।[52]

गुरुकुलीयशिक्षा में छात्रा एक समय भिक्षा का अन्न मांगकर खाते हैं इससे भ्रातृत्व एवं सह-अस्तित्व की भावना का विकास होता है। गुरुकुल में आचार्य अपने शिष्य को अहिंसा का उपदेश देते हुए कितने सुन्दर ढंग से सिखाते हैं-

ओऽम् मधुमन्मे निक्रमणं मधुमन्मे परायणम्। वाचा वदामि मधुमद् भूयासं मधुसन्दृशः।।[53]

मेरी संसार में प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों ही माधुर्य से पूर्ण हों। वाणी से मधुर ही बोलूं और इस प्रकार इस मधुरता के रहस्य को जानकर, मधुरूप ईश्वर के सदृश बन जाऊँ। शिक्षा के इससे ऊँचा आदर्श और क्या हो सकता है?

9. Solution based education.

(समाधानपरक शिक्षा)

नई शिक्षा नीति में ये माना जा रहा है कि शिक्षा जीवन की समस्याओं के समाधन को लाने वाली होनी चाहिये, क्योंकि आज तक के अनुभव से यह देखा जा रहा कि आज का शिक्षित युवा मात्र एक सर्टिफिकेट लेकर इधर-उधर नौकरी की तलाश में ढेर सारी समस्याएं लेकर घूम रहा है और कभी-कभी ऊँचे पद पर प्रतिष्ठित होने के बावजूद भी आत्महत्या करते हुए दिखाई देता है यह सब संस्कारविहीन शिक्षा का ही फल है। यह शिक्षा का सच्चा स्वरूप नहीं हो सकता है। गुरुकुलीय शिक्षा के एक उदाहरण से आप जान पायेंगे कि वह शिक्षा अपने आप में कितनी पूर्ण थी। छान्दोग्योपनिषद् में गुरुजी अपने शिष्य आरुणि से खेत में पानी को रोकने के लिए मेढ़ बनाने का आदेश देते हैं, जब पानी का प्रवाह नहीं रुक पाता है तो आरुणि गुरु जी को कोई विवशता न बताकर स्वयं अपने शरीर को जल प्रवाह के सामने लिटाकर जल प्रवाह को रोक देते हैं। इसी प्रकार रामायण में श्रीराम, लक्ष्मण, भरत, हनुमान्, माता सीता, अंजना, महर्षि दयानन्दादि महापुरुष प्रत्येक समस्या का समाधन खोजने वाले दिखाई देते हैं क्योंकि इनकी शिक्षा-दीक्षा गुरुकुलों में हुई थी, आधुनिक युग में परम पूज्य गुरुदेव श्रद्धेय स्वामी रामदेव जी महाराज एवं श्रद्धेय आचार्य बालकृष्ण जी महाराज ने शारीरिक, मानसिक एवं आर्थिक समस्याओं का समाधन योग, आयुर्वेद एवं स्वदेशी से निकालकर भारत ही नहीं पूरे विश्व को एक नूतन तरीके से जीने की कला सिखायी हैं। जो गुरुकुलीय शिक्षापद्धति एक प्रखर प्रमाण हमारे समक्ष है।

10. Self-reliant education.

(आत्मनिर्भर शिक्षा)

आज चीन, ऑस्ट्रेलिया, जापान आदि बड़े-बड़े देश इसी प्रकार की शिक्षानीति का आलम्बन लेने के कारण अधिकतर विषयों में आत्मनिर्भर हैं, लेकिन लगता है यह गुण उन्होंने कहीं न कहीं भारतीय शिक्षा पद्धति से ग्रहण किया है। प्राचीन गुरुकुलों में प्रातःकाल से सायं पर्यन्त दी जाने वाली शिक्षा आत्मनिर्भर बनाने वाली शिक्षा होती थी।

प्रतिदिनं रात्रोः पश्चिमे यामे चोत्थायावश्यकं कृत्वा दन्तधवनस्नानसन्ध्योपासनेश्व-
रस्तुतिप्रार्थनोपासनायोगाभ्यासान्नित्यमाचर।।[54]

सुशीलो मितभाषी सभ्यो भव।।[55]

मेखलादण्डधरणभैक्ष्यचर्यसमिदाधनोदकस्पर्शनाचार्यप्रि
याचरणप्रातःसायमभिवादनविद्या-
संचयजितेन्द्रियत्वादीन्येते ते नित्यधर्माः ।।[56]

सभी विद्यार्थी ब्रह्ममुहूर्त्त में उठकर अपनी दिनचर्या के पश्चात् अपनी-अपनी रुचि एवं योग्यतानुसार अनेक प्रकार की विद्याओं में कुशलता प्राप्त करके, समावर्तन संस्कार के पश्चात् जीवन में आत्मनिर्भर बनकर शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, आत्मिक, सांस्कृतिक एवं भौतिक समृद्धि से युक्त होकर लोक जीवन में सर्वसमावेशी एवं विश्वबन्धुत्व से युक्त भावना का समारोपण करते थे।

12. उपसंहार-

प्राचीन युग की अपेक्षा आधुनिक काल में शिक्षा के प्रचार और प्रसार में तकनीकी रूप से काफी बढ़ोतरी हो गयी है। शिक्षकों, छात्रों एवं शिक्षा केन्द्रों की संख्या में भी इसी अनुरुप काफी उछाल भी आया है। किन्तु इस समयानुकूल वृद्धि के साथ-साथ आज के अर्थ युग में शिक्षा के मायने भी काफी बदल चुके हैं। आन्तरिक बोध् के अभाव में हो रहे बौद्धिक संवर्द्धन की यह पाश्चात्य प्रक्रिया मानव को एक विचारहीन तथा संवेदनहीन तथा दिशाहीन यांत्रिक प्राणी के रूप में ही परिवर्तित करती जा रही है। **स्व-केन्द्रित विकास की अंधी मानसिकता से मानवता के सभी आदर्श तार-तार होते जा रहे हैं। नीतिगत निर्णय लेने से पूर्व हमें प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति व उनके द्वारा प्रतिस्थापित मानवीय मूल्यों के प्रति गंभीरता से पुनरावलोकन करने की महती आवश्यकता है। इसके लिए आधुनिक शिक्षा केन्द्रों में ऐसे आचार्यों के नियोजन की नितान्त आवश्यकता है जो अपनी प्रज्ञा का उपयोग करते हुए शिष्यों के अन्दर बुद्धिमत्ता, भावनात्मकता सच्चरित्रता तथा पुरुषार्थ के उदात्त गुणों के साथ-साथ आध्यात्मिकता के पवित्र बोध को अंकुरित कर उसके सर्वांगीण विकास का मार्ग प्रशस्त कर सके।** भारतीय शिक्षा का मूल आधर विषयगत दक्षता के साथ-साथ मानव निर्माण **(मनुर्भव)** का भी रहा है। विद्वान् उसे ही माना गया जो **मातृवत् परदारेषु परद्रव्येषु लोष्वत्। आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पंडितः।[57]** हितोपदेश, मित्रालाभ शिक्षा की इन भारतीय अवधरणाओं को पुनःस्थापित करने का दायित्व हमारे कंधें पर ही है। अतः शिक्षा व शिक्षण पद्धतियों को राष्ट्रानुकूल तथा सांस्कृतिक भाव-भूमि में पनपे परिवेशानुकूल आधर पर व्यवस्थित करने के लिए भारतीय ज्ञान परंपरा के मर्मज्ञ अध्येताओं के सहयोग से एक उद्देश्यपूर्ण **शिक्षा नीति** व तद्नुरूप **पाठ्यक्रमों** के पुनर्संयोजन का कटिबद्ध प्रयास करना होगा और तभी जाकर आत्मनिर्भरता के बोध् वाले इस वेद मंत्रा का संकल्प पूर्ण करने में यह राष्ट्र समर्थ हो सकेगा-

उद्यानं ते पुरुष नावयानं जीवातुं ते दक्षतातिं कृणोमि।।[58]

हे नर देख जीवन में सदा तेरी उन्नति ही होनी चाहिए, अधोगति नहीं, पतन नहीं, तेरे अन्दर मैं जीवन बल फूँकता हूँ। यह मनुष्य के लिए भगवान् का आदेश है। अर्थात् वास्तव में विद्या वही है जो हमें समस्त बन्धनों से विमुक्त कर सके। अतः आज पुनः उसी गुरुकुलीय शिक्षा व्यवस्था को अपनाने की नितान्त आवश्यकता है।

संदर्भ-ग्रन्थ सूची

1. यजु.अ.11.5, यजुर्वेद संहिता, संस्करण-2009, दिव्य प्रकाशन, पतंजलि योगपीठ, दिव्य योग मंदिर (ट्रस्ट) दिल्ली-हरिद्वार रोड, बहादराबाद, हरिद्वार-249402

2. यजुः 26.15, यजुर्वेद संहिता, संस्करण-2009, दिव्य प्रकाशन, पतंजलि योगपीठ, दिव्य योग मंदिर (ट्रस्ट) दिल्ली-हरिद्वार रोड, बहादराबाद, हरिद्वार-249402

3. मनुस्मृति 2.37 विशुद्ध मनुस्मृति, डॉ. सुरेन्द्र कुमार, आठवां संस्करण, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, 427 गली मन्दिर वाली नया बांस दिल्ली, 110006

4. हितोप. प्रस्ता.-6, भट्ट पं. रामरेश्वर, संस्करण-2015, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली-110007

5. अभिज्ञान-शाकु.-1.15., कालीदास ग्रन्थावली, शास्त्री पण्डित श्रीरामतेज शास्त्री, संस्करण-2012, चौखम्भा, सुरभारतीय प्रकाशन, वाराणसीद्ध

6. अथर्ववेद-11.5.3, अथर्ववेद संहिता, संस्करण-2009, दिव्य प्रकाशन, पतंजलि योगपीठ, दिव्य योग मंदिर (ट्रस्ट) दिल्ली-हरिद्वार रोड, बहादराबाद, हरिद्वार-249402

7. बृहदारण्यकोपनिषद्- 1.4.10, सिद्धान्तालंकार, डॉ. सत्यव्रत, विजयकृष्ण लखनपाल, डब्लू-77 ए, ग्रेटर कैलाश-1, नई दिल्ली-48

8. आश्वलायनगृह्यसूत्रा-1.7, डॉ. जमुनापाठक, संस्करण-2011, चौखम्बासंस्कृत, सीरीज आफिस, चौखम्बा प्रेस, वाराणसी

9. बृहदारण्यकोपनिषद-1.4.10, सिद्धान्तालंकार, डॉ. सत्यव्रत, विजयकृष्ण लखनपाल, -77 ए, ग्रेटर कैलाश-1, नई दिल्ली-48

10. कठोपनिषद्-1.3.14, ईशादि नौ उपनिषद्, गोयन्दका हरिकृष्ण, संस्करण-सम्वत् 2077- कोड-66, गीताप्रेस, गोरखपुर।

11. यजुः 19.30, यजुर्वेद संहिता-दिव्य प्रकाशन, संस्करण-2009, पतंजलि योगपीठ, दिव्य योग मंदिर (ट्रस्ट) दिल्ली-हरिद्वार रोड, बहादराबाद, हरिद्वार-249402

12. अथर्ववेद-11.5.3, अथर्ववेद संहिता, संस्करण-2009, दिव्य प्रकाशन, पतंजलि योगपीठ, दिव्य योग मंदिर (ट्रस्ट) दिल्ली-हरिद्वार रोड, बहादराबाद, हरिद्वार-249402

13. आश्वलायनगृह्यसूत्रा-1.21.7, डॉ. जमुनापाठक, संस्करण-2011, चौखम्बासंस्कृत, सीरीज आफिस, चौखम्बा प्रेस, वाराणसी।

14. न्याय दर्शन-1.1.1, वात्स्यायनभाष्यसहित्, (संस्कृत आयुर्वेद एवं इण्डोलाजिकल ग्रन्थों के प्रकाशक एवं वितरक,) चौखम्भा संस्कृत भवन, वाराणसी, -221001

15. वा.रा. अयो.-43.6, वाल्मीकि रामायण, सरस्वती स्वामी जगदीश्वरानन्द, संस्करण-2020, विजय कुमार गोविन्दराम हासानन्द, 4408, नई सड़क, दिल्ली- 110006

16. वा.रा. अयो.-44.12, वाल्मीकि रामायण, सरस्वती स्वामी जगदीश्वरानन्द, संस्करण-2020, विजय कुमार गोविन्दराम हासानन्द, 4408, नई सड़क, दिल्ली- 110006

17. मनुस्मृति-2.20, विशुद्ध मनुस्मृति, सुरेन्द्र कुमार, संस्करण-अठवां, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, 427 गली, मन्दिर वाली नया बांस, दिल्ली-110006

18. नारीअंक, पृष्ठ-380 से 410, (कल्याण नारी अंक संस्करण-11 वाँ, संवत् 2066,) गीताप्रेस, गोरखरपुर, (गोविन्दभवन-कार्यालय, कोलकाता का संस्थान) ।

19. पाणिनी अष्टा. -6/2/86, पाणिनीयअष्टाध्यायीसूत्रापाठः संवत्- 2076, दिव्य प्रकाशन, पतंजलि योगपीठ, दिव्य योग मंदिर (ट्रस्ट) दिल्ली-हरिद्वार रोड, बहादराबाद, हरिद्वार-249402

20. स्कन्ध पु. -प्रथम, माहे. 23.46, स्कन्धपुराणम्, खण्डेलवाल एस.एन., संस्करण-प्रथम- 2014, चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी-221001द्ध

21. शांकरदिगविजयम् सर्ग-8, श्लोक- 6,7,8, श्रीविद्यारण्यविरचितः श्रीमच्छंकरदिग्विजयः, आपटे महादेव

चिमणाजी, शालिवाहनशकाब्दाः 1812, खिस्ताब्दाः 1891, ग्रन्थाघङ्कः 22, आनन्दाश्रममुद्रणालये।

22. यजुर्वेद-26.2, यजुर्वेद संहिता, संस्करण-2009, दिव्य प्रकाशन, पतंजलि योगपीठ, दिव्य योग मंदिर (ट्रस्ट) दिल्ली-हरिद्वार रोड, बहादराबाद, हरिद्वार-249402

23. भोजप्रबन्ध-94, लाल सुधीर कुमार, संस्करण-2010 राष्ट्रीय संस्कृत संस्थानम् मानित विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।

.24. शृङ्गागारप्रकाशः (प्रथम भाग), नवम प्रकाश, असाधु दोष का उदाहरण, संपादक-रेवा प्रसाद द्विवेदी, संस्करण-प्रथम- वर्ष 2007, कालिदास संस्थान, महामनापुरी, वाराणसी।

25. तैत्तिरीयोपनिषद् शिक्षावल्ली-1/अनुवाक-11 गोयन्दका हरिकृष्णदास, सम्वत्-2077, कोड-66, गीताप्रेस, गोरखपुर (गोविन्दभवन-कार्यालय, कोलकाता का संस्थान) ।

26. सनत्सुजातीयभाष्यम्-4, श्री शघङ्कराचार्य विरचित-प्रकरण ग्रन्थाः, एच.आर. भागवत, संस्करण-2013, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी।

27. धम्मपद-अप्पमादवग्गो-1, डॉ. भिक्षु धर्मरक्षित, संस्करण-2012, मोतीलाल बनारसीदास, 41 यू.ए. बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली-110007.

28. व्याकरण, महा. -1 अ., 1पा., 1 पस्पशा., व्याकरणमहाभाष्यम्, संस्करण- 2014, प्रथम खण्ड, शास्त्री भार्गव, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान दिल्ली।

29. निरुक्त-1.2.2, वेदार्थदीपक, निरुक्तभाष्य, विद्यालंकरचन्द्रमणि, संस्करण-संवत्-2063, हरियाणा साहित्य संस्थान, गुरुकुल झज्जर (हरियाणा)।

30. यजुर्वेद-9.23, यजुर्वेद संहिता, संस्करण-2009, दिव्य प्रकाशन, पतंजलि योगपीठ, दिव्य योग मंदिर (ट्रस्ट) दिल्ली-हरिद्वार रोड, बहादराबाद, हरिद्वार-249402

31. पार०गृह्य 2/4/3, संस्कार विधिः, महर्षि दयानन्द सरस्वती, रामलाल कपूर ट्रस्ट, रेवली, डाक- ई.सी. मुरथल, सोनीपत, हरियाणा।

32. तैति. उप. 2.2.2, गोयन्दका हरिकृष्णदास, सम्वत्-2077, कोड-66, गीताप्रेस, गोरखपुर (गोविन्दभवन-कार्यालय, कोलकाता का संस्थान) ।

33. अथर्ववेद-11.5.3, अथर्ववेद संहिता, संस्करण-2009, दिव्य प्रकाशन, पतंजलि योगपीठ, दिव्य योग मंदिर (ट्रस्ट) दिल्ली-हरिद्वार रोड, बहादराबाद, हरिद्वार-249402

34. तैत्तिरी. शिक्षा. 3.1, गोयन्दका हरिकृष्णदास, सम्वत्-2077, कोड-66, गीताप्रेस, गोरखपुर (गोविन्दभवन-कार्यालय, कोलकाता का संस्थान) ।

35. अथर्ववेद-11.5.1, अथर्ववेद संहिता, संस्करण-2009, दिव्य प्रकाशन, पतंजलि योगपीठ, दिव्य योग मंदिर (ट्रस्ट) दिल्ली-हरिद्वार रोड, बहादराबाद, हरिद्वार-249402

36. केनोपनिषद् 1.1, गोयन्दका हरिकृष्णदास, सम्वत्-2077, कोड-66, गीताप्रेस, गोरखपुर (गोविन्दभवन-कार्यालय, कोलकाता का संस्थान) ।

37. कठोपनिषद् 1.22, गोयन्दका हरिकृष्णदास, सम्वत्-2077, कोड-66, गीताप्रेस, गोरखपुर (गोविन्दभवन-कार्यालय, कोलकाता का संस्थान) ।

38. कठोपनिषद् 2.3, गोयन्दका हरिकृष्णदास, सम्वत्-2077, कोड-66, गीताप्रेस, गोरखपुर (गोविन्दभवन-कार्यालय, कोलकाता का संस्थान) ।

39. प्रश्नोपनिषद् 1.1, गोयन्दका हरिकृष्णदास, सम्वत्-2077, कोड-66, गीताप्रेस, गोरखपुर (गोविन्दभवन-कार्यालय, कोलकाता का संस्थान) ।

40. आश्वलायनगृह्यसूत्राम्। एकविंशतितमा कण्डिका-1, डॉ. जमुनापाठक, संस्करण-2011, चौखम्बासंस्कृत, सीरीज आफिस, चौखम्बा प्रेस, वाराणसी

41. बौधायनधर्मसूत्राम्-2/4/1 आचार्य डॉ. नरेन्द्र कुमार, संस्करण प्रथम-1999, विद्यानिधि प्रकाशन, दिल्ली-110094

42. ऋग्वेद-8.42.3, संस्करण-2009 दिव्य प्रकाशन, पतंजलि योगपीठ, दिव्य योग मंदिर (ट्रस्ट) दिल्ली-हरिद्वार रोड, बहादराबाद, हरिद्वार-249402

43. ऋग्वेद-10.71.7, ऋग्वेद संहिता, संस्करण-2009 दिव्य प्रकाशन, पतंजलि योगपीठ, दिव्य योग मंदिर (ट्रस्ट) दिल्ली-हरिद्वार रोड, बहादराबाद, हरिद्वार-249402

44. शिक्षावल्ली-3.3, तैत्तिरीयोपनिषद् शिक्षावल्ली-1/अनुवाक-3/3 गोयन्दका हरिकृष्णदास, सम्वत्- 2077 कोड-66, गीताप्रेस, गोरखपुर (गोविन्दभवन-कार्यालय, कोलकाता का संस्थान) ।

45. मनुस्मृति-2.218, विशुद्ध मनुस्मृति, सुरेन्द्र कुमार, संस्करण-अठवां, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, 427 गली, मन्दिर वाली नया बांस, दिल्ली-110006

46. अथर्ववेद -11.5.5, अथर्ववेद संहिता, संस्करण-2009, दिव्य प्रकाशन, पतंजलि योगपीठ, दिव्य योग मंदिर (ट्रस्ट) दिल्ली-हरिद्वार रोड, बहादराबाद, हरिद्वार-249402

47. सुश्रुत, सूत्रास्थान, अ. 35. श्लोक-13, सुश्रुतसंहिता, आचार्य नारायणराम, संस्करण- 2014, के.37, 118, गोपाल मंदिर लेन, गोलघर, (मैदागिन) के पास, चौखम्बा, कृष्णदास अकादमी, वाराणसी-221001

48. यजुर्वेद-26.2, यजुर्वेद संहिता, संस्करण-2009, दिव्य प्रकाशन, पतंजलि योगपीठ, दिव्य योग मंदिर (ट्रस्ट) दिल्ली-हरिद्वार रोड, बहादराबाद, हरिद्वार-249402

49. महर्षि दयानन्द, संस्कारविधिः पृष्ठ- 128 रामलाल कपूर ट्रस्ट, रेवली, डाक. ई.सी. मुरथल, सोनीपत, हरियाणा।

50. छान्द.4.4.5, एकादशोपनिषद्, विद्यामार्तण्ड डॉ. सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार, संस्करण-प्रथम एवं द्वितीय भाग, विजयकृष्ण लखनपाल, डब्लू-77 ए, ग्रेटर कैलाश-1, नई दिल्ली-48

51. छान्द.4.9.2, ईशादि नौ उपनिषद्, गोयन्दका हरिकृष्ण, संस्करण-सम्वत् 2077- कोड-66, गीताप्रेस, गोरखपुर।

52. न्यायदर्शन-4.2.48, वात्स्यायनभाष्यसहित्, (संस्कृत आयुर्वेद एवं इण्डोलाजिकल ग्रन्थों के प्रकाशक एवं वितरक) चौखम्भा संस्कृत भवन, वाराणसी,-221001

53. अथर्व. 1.34.3, अथर्ववेद संहिता, संस्करण-2009, दिव्य प्रकाशन, पतंजलि योगपीठ, दिव्य योग मंदिर (ट्रस्ट) दिल्ली-हरिद्वार रोड, बहादराबाद, हरिद्वार-249402

54. संस्कारविधिः पृष्ठ संख्या-123, रामलाल कपूर ट्रस्ट, रेवली, डाक. ई.सी. मुरथल, सोनीपत (हरियाणा)

55. संस्कारविधिः पृष्ठ संख्या-124, रामलाल कपूर ट्रस्ट, रेवली, डाक. ई.सी. मुरथल, सोनीपत (हरियाणा)

56. संस्कारविधिः पृष्ठ संख्या-124, रामलाल कपूर ट्रस्ट, रेवली, डाक. ई.सी. मुरथल, सोनीपत (हरियाणा)

57. हितोप. मित्रा. 14, भट्ट पं. रामरेश्वर, संस्करण-2015, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली-110007

58. अथर्व. 8.1.6, अथर्ववेद संहिता, संस्करण-2009, दिव्य प्रकाशन, पतंजलि योगपीठ, दिव्य योग मंदिर (ट्रस्ट) दिल्ली-हरिद्वार रोड, बहादराबाद, हरिद्वार-249402